परिचय

पिता श्री	:	पं. शिवदत्त शर्मा
माता श्री	:	श्रीमती भगवान देवी शर्मा
जन्मतिथि	:	06 जून, 1941
शिक्षा	:	एम.ए., पी–एच.डी. (मनोविज्ञान)
आजीविका	:	रीडर एवं अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, गाँधी महाविद्यालय, उरई (जालौन) उ. प्र., सेवानिवृत्त 30 जून, 2001
प्राचार्य	:	श्रीमती अमृत कुंवर महाविद्यालय, अटराकलां (जालौन), जुलाई 2001 से जून 2008 तक
आजीवन सदस्य	:	सांविधानिक एवं संसदीय अध्ययन संस्थान, उत्तर प्रदेश, क्षेत्रीय शाखा, विधान परिषद, उत्तर प्रदेश लखनऊ
वरिष्ठ लोकायुक्त	:	आम आदमी पार्टी, जनपद जालौन (उ.प्र.)
सदस्य	:	बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की मनोविज्ञान पाठ्यक्रम समिति एवं शोध समिति के संयोजक (अनेकवार) सदस्य–कलासंकाय, विद्या परिषद
डायरेक्टर	:	यू.जी.सी., राष्ट्रीय सेमिनार–सामाजिक तनाव विविध परिदृश्य (1990)
शोधकार्य	:	12 शोध प्रबन्ध, 18 लघु शोध प्रबन्ध, 40 शोध पत्र
प्रकाशन	:	Need Pattern of Tribal and Nontrialal youth (1992) Agra Psychological Research cell, Agra (शोध प्रबंध)
सम्पादन	:	सामाजिक तनाव : विविध परिदृश्य (1994) दिव्या प्रकाशन, लखनऊ
संस्थापक अध्यक्ष	:	भारतीय जननाट्य संघ (इप्टा) उरई 1985 एवं (प्रलेश) प्रगतिशील लेखन संघ (प्रलेश) उरई 1991, उपाध्यक्ष, उ.प्र. इप्टा लखनऊ (2004–16), सदस्य राष्ट्रीय कार्यकारिणी, इप्टा (2007–16)
रंगकर्म	:	नुक्कड नाटक–औरत, अपहरण भाई चारे का (अनेकवार), मंचीय नाटक–कारवा गुजर गया (वातायन, उरई 1984), चरनदास चोर (उरई, इलाहाबाद, रायबरेली, जबलपुर, शिमला), निदेशन–जनता पागल हो गई है।
सम्पर्क	:	1002–डी, राजेन्द्रनगर, स्टेशन रोड, उरई (जालौन)
मोबाइल नं0	:	9452344948

बेहतर दुनिया की तलाश

सतीश चन्द्र शर्मा

बेहतर दुनिया की तलाश

सतीश चन्द्र शर्मा

मूल्य : ₹ 400.00

© डा. सतीश चन्द्र शर्मा

पहला संस्करण :
2018

प्रकाशक :
भारतीय जन नाट्य संघ 'इप्टा', उरई

आवरण चित्र :
राज पप्पन

शब्द संयोजन :
डा. नीलू शर्मा

मुद्रक : एक्सीलेण्ट ग्राफिक्स, उरई
मोबा. 9695459663

idk'kd dh dye l

मानवीय मूल्यों के लिये सतत् संघर्षरत डा. सतीशचन्द्र शर्मा की पुस्तक 'बेहतर दुनिया की तलाश' लगभग आधी सदी के उनके कार्यशील जीवन की व्यक्तिगत अनुभूतियों का अनूठा संग्रह है।

'बेहतर दुनिया की तलाश' लेखक द्वारा उन मानवीय मूल्यों को बचाने की जद्दोजहद है जो हमें सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् में लीन करती है। लेखक की प्रिय पंक्तियों के साथ –

तू जिन्दा है तो जिन्दगी की जीत पर यकीन कर।
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार जा जमीन पर।।

उरई 'इप्टा' परिवार इस पुस्तक के प्रकाशित करने पर गौरवान्वित है।

noUn 'kDy
अध्यक्ष, भारतीय जन नाट्य संघ 'इप्टा'
उरई

vuØe

क्रम		पृष्ठ
I.	*आत्म कत्थ्य*	07
II.	*बेहतर दुनिया की तलाश*	12
III.	*वंचितों की तकलीफ का रेखांकन*	17
	Hkkx 1 % vkyksd	
1.	बटुकेश्वर दत्त	20
2.	मूल्य : सामाजिक परिप्रेक्ष्य में	26
3.	राष्ट्रीय एकता : स्वरूप और अवरोध	31
4.	आचार्य द्रोण नहीं, चाणक्य चाहिये	36
5.	दलित संचेतना : मनोसामाजिक पक्ष	41
6.	कला व्यक्ति को संस्कारित करती है	50
7.	प्रतिवद्ध–जनकवि : नार्गाजुन	52
8.	दुष्यन्त : एक नजर में	56
9.	कहानी एक अथातो घुमक्कड़ की	62
10.	बेहतर दुनिया की तलाश	65
11.	सफदर हाशमी	68
12.	महाजनी सभ्यता	71
13.	प्रेमचन्द एक जनलेखक	74
14.	प्रेमचन्द : विरासत और वसीयत	77
15.	विचार कभी मरता नहीं	84
16.	1857 की पृष्ठभूमि	90

	Hkkx 2 % lkfo/kkfud ,oa lkekftd v/;;u lLFkku] fo/kku ifj"kn mRrj in'k {k=h; 'kk[kk }kjk vk;kftr fopkj xks"Bh e iLrkfor oDr0;	
17.	विचार धारा आधारित राजनीति	97
18.	भारतीय लोकतंत्र का भविष्य	103
19.	संविधान की धारा 356 की आवश्यकता	110
20.	स्थायी सरकार का महत्व और संविधान	116
21.	संसदीय प्रणाली में अनुशासन	120
22.	आतंकवाद और लोकतंत्र में मानवाधिकार	124
23.	राजनीति में अपराधीकरण	129
24.	निर्वाचन के समय मीडिया की भूमिका	136
25.	नक्सलवाद समस्या और समाधान	139
26.	लोकतंत्र में युवाओं की भूमिका	148
27.	शिक्षा का महत्व	151
28.	समाज में महिलाओं की भूमिका	153
	Hkkx 3 % dfork&vdfork	
29.	बात में ही रात बीती	159
30.	मैं कैसे कर लूँ विश्राम	160
31.	गांधी ने सिखाई थी हमें अहिंसा की लड़ाई	161
32.	दिल्ली	163
33.	तुमने मुझको स्नेह दिया	166
34.	अवसान में आए	167
35.	सुकुमार शतदल	168
36.	सितारों में बसती है ज़िन्दगी	169
37.	संसार में आकर	170
38.	दर्द देकर मुझे तुम	171
39.	ज़िन्दगी सिर्फ़ एक लम्हे की नहीं है	173
40.	खून बोतल में हो किसी का भी	174
41.	मुक्तक	175

l e i.k

Jherh l/kk 'kekZ
6 tu 1948&30 ekp 2010

euh"k 'kekZ
12 vDVcj 1968&24 tykbZ 2014

ek& cV

r/e nkuk

lkou dh ';key

e?k&?kVk Fk

cj l ifr iy

'kh ry cnk l

ej thou e

vkRe&dRF;

पूर्ण आदर्श जीवन में नहीं उतारा जा सकता। संसार यथार्थवादियों के लिये है, आदर्शवादियों के लिये नहीं। प्रेमचन्द को भी अपने कथा–कहानी के सफर में आदर्शवाद से यथार्थवाद पर आना पड़ा था। यही कारण है कि आदर्श और यथार्थ के बीच उलझा आदमी समाज के प्रति कब विद्रोही हो उठता है पता नहीं। मैंने अपने जीवन में जो कुछ भी सीखा स्वामी विवेकानन्द और रजनीश से। रजनीश, जिनको मैंने कभी 'ओशो' नहीं कहा और न स्वीकार किया। प्रेमचन्द और शरत के साहित्य ने राह दिखाई। योगदर्शन, सांख्यदर्शन, अष्ट्रावक्र–जनक संवाद, श्रीमद्भागवत एवं गीता जैसे ग्रन्थों के अध्ययन के बाद, ईश्वर है या नहीं, इस पचड़े में कभी नहीं पड़ा, क्योंकि ईश्वर हमारे लिये कुछ भी नहीं कर सकता। स्वयं ही कुछ करना होता है। स्वयं ही चलना होता है। जीवन का एक ही लक्ष्य है चरैवेति–चरैवेति। जिन्दगी में कहीं भी विश्राम नहीं है।

ऊपर वर्णित पुस्तकों से मैंने जो भी ग्रहण किया है उसकी चर्चा करना एक रोचक विषय है। धर्म के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में कहा था– मैं उस देश से आया हूँ जिसकी भाषा के 'धर्म' शब्द का पर्यायवाची दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। 'धर्म' आंग्ल भाषा का 'रिलीजन' नहीं है। धर्म के दस लक्षण है– सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, बृम्हचर्य, शौच, सन्तोष, तप, स्वास्थ्याय एवं ईश्वर प्राणिधान (ईश्वर प्राणिधान का तात्पर्य अंहविहीन होना और ब्रह्म्चर्य का अर्थ मैथुन से नहीं बल्कि वैचारिक विस्तार है)। धर्म के इन दस लक्षणों का किसी भी प्रकार की पूजा पद्धति या कर्मकाण्ड से दूर तक कोई वास्ता नहीं है। धर्म की पहचान किसी नाम से नहीं होती।

कृष्ण दुनिया के पहले मनोचिकित्सक थे और गीता मनोचिकित्सा विज्ञान की पहली पुस्तक है। गीता 'विषाद' से प्रारम्भ होती है। विषाद

व्यक्ति को लक्ष्य से विमुख करता है, तभी तो अर्जुन कहते है– ''आसक्ति के वशीभूत मैं अर्जुन अपना लक्ष्य सुनिश्चित नहीं कर पा रहा हूँ, पार्थ मेरा मार्गदर्शन करें।'' (अध्याय 2, श्लोक 7)। अठारहवाँ अध्याय के श्लोक 73 में अर्जुन का कथन है– 'अच्युत! मेरी आसक्ति नष्ट हो गई है। मुझे स्मृति प्राप्त हो गई है, मैं संशय रहित और स्थिर हूँ।''इस प्रकार गीता विषाद रहित जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है।

पंतजलि का योगदर्शन शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की एक अनूठी पुस्तक है। सांख्यदर्शन में प्रकृति एवं पुरुष का विशद विवेचन है। श्रीमद्भागवत विभिन्न कथानकों के माध्यम से अद्वैत दर्शन की पुस्तक है। अद्वैत दर्शन समस्त जीवधारियों में एक ही आत्मतत्व की बात करता है। जब सभी जीवधारियों में एक ही आत्मतत्व हैं तो किसी भी समर्थ व्यक्ति को वंचितों के शोषण का अधिकार नहीं है वल्कि इनका सवलीकरण उसका दायित्व है। इस प्रकार अद्वैत दर्शन शोषण मुक्त दुनियां की बात करता है, एक बेहतर दुनियां की बात करता है। कृष्ण प्रगतिशील जनवादी व्यक्तित्व हैं, जो समाज के सभी प्रतिगामी अवरोधों का निषेध कर समाज को इस नई दिशा में ले चलने के दायित्व का निर्वहन करते है।

मैंने कभी कोई सपना नहीं देखा, जिसे साकार करने की कोशिश करता। फिर भी मैंने अपनी दुनियां खुद बनाई। जिसमें मैंने अपनापन महसूस किया। धर्म, (जैसा कि प्रचलन में है) क्या होता है, जाति क्या होती है, जीवन के अन्तिम पड़ाव पर आकर भी आज तक नहीं जान पाया। हाँ! यह जरूर जाना कि अमीरी और गरीबी किस तरह व्यक्तियों को परस्पर एक दूसरे से दूर करती है ? धन का अभाव किस तरह जिन्दगी को बेवस कर देता है, इसे महसूस किया है।

परिवार के साहित्यक एवं संगीतमय वातावरण से सम्पन्नता प्राप्त की। प्रातः पाँच बजे से रात्रि दस बजे तक घर में निरन्तर तबला, हारमोनियम और सितार के स्वर गूंजते रहते थे। बड़े भाई इन्द्रदत्त के संरक्षण में अग्रज नरेन्द्र, बहन सावित्री एवं प्रभा का रियाज़ कभी थमता नहीं था। कानपुर

नगर के गणमान्य संगीतज्ञ नाथूराम जी, ज्ञानीराम जी, रामस्वरूप कटियार, विनायक फड़के (सितार), नृत्य विशेषज्ञ वृन्दावन लाल एवं उनके अनुज चेतराम जी सहित कई अन्य संगीतकार प्रायः आते, संगीत की महफिल सजती। यह माहौल 1955 से 1960 तक लगातार चलता रहा। माता–पिता फतेहगढ़ में रहते थे।

कानपुर के ख्याति प्राप्त थियोसोफिस्ट सतीशचन्द्र चित्रे के सानिध्य में दस वर्ष व्यतीत करने का सुअवसर अनायास ही मिल गया। हम दोनों हर सहाय जगदम्बा सहाय इण्टर कालेज पी–रोड, कानपुर में अध्यापक थे। मनोविज्ञान के विशेषज्ञ एवं मर्मज्ञ, योगदर्शन के विद्वान, चित्रे जी अभिनय, काव्य कला एवं मनोजगत की सूक्ष्म बारीकियाँ के जानकार थे और साथ ही सरलता, सहजता, कर्तव्यनिष्ठा सहनशीलता आदि की प्रतिमूर्ति। ये सभी क्रमशः मेरे व्यक्तित्व में समाते गये, यह आज महसूस करता हूँ। निम्न पंक्तियों के साथ चित्रे जी से मैंने जीवन दर्शन प्राप्त किया–

दे मस्त फकीरी तू मुझको,
शाहों की भी परवाह न हो,
मैं न किसी का शाह बनू,
मेरा भी कोई शाह न हो।।

इस पूंजी को समेटे नवम्बर 1972 में उरई आया। अनजान शहर, अनजान चेहरा। तेरह साल के अन्तराल के बाद भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा), एवं प्रगतिशील लेखक संघ (प्र.ले.श.) का गठन किया। प्रारम्भ में परिस्थितियां विपरीत थी, किन्तु साथी मिलते गये, कारबाँ बढ़ता गया। जनपद में ही नहीं प्रान्त में और प्रान्त के बाहर भी उरई इप्टा की गूंज पहुँची। पत्नी सुधा ने मेरे चिन्तन और कृतित्व दोनों को प्रोत्साहित किया। सुधा के असामयिक निधन ने अन्दर तक झकझोर दिया। इसके ठीक चार साल बाद 2014 में बड़े पुत्र मनीष के महाप्रयाण ने और अधिक अवसादग्रस्त कर दिया। किन्तु नियति को स्वीकारा, आगे कदम बढ़े और यह पुस्तक आपके समक्ष है।

बख्तियार मशिरिकी के शायराने अन्दाज़, ओमप्रकाश श्रीवास्तव 'नदीम' के ठहाकों और साथ ही हरीश्याम 'पारथ', पूरन मिश्र एवं नासिर अली 'नदीम' के सूफियाने की खुशबू ने और इसी कड़ी में शिवानन्द मिश्र 'बुन्देला', गीतेश, सन्तोष दीक्षित, यज्ञदत्त त्रिपाठी, यूसुफ इश्तियाक, साहित्य अकादमी से सम्मानित डा0 रामशंकर द्विवेदी एवं सत्यवान की सक्रियता एवं सहयोग ने उरई के साहित्यिक जगत को एक नई पहचान दी। अशोक बाजपेई, मैंनेजर पाण्डेय एवं मैत्रेयी पुष्पा ने दिल्लीवासी होने के बावजूद, पहली दफा उरई में ही एक साथ मंच साझा किया। यह साहित्य जगत की अजूवा घटना थी।

संगीत के क्षेत्र में वीणा श्रीवास्तव एवं सुरेन्द्र खरे, अभिनय एवं रंगमंच की विधा में ब्रजेश श्रीवास्तव, ठा0 सुरेन्द्र सिंह, अयोध्या प्रसाद गुप्त, 'कुमुद' राजपप्पन, स्वातीराज, मुन्नालाल नामदेव, आर0पी0 श्रीवास्तव, एन0डी0 दीक्षित, सुबोध जी, यू0के0 सोनी, संजीव कुमार, देवेन्द्र शुक्ला, धनीराम, दीपेन्द्र जैसे वरिष्ठ एवं युवा रंगकर्मियों के परस्पर सहयोग और साथ–साथ चलने की क्षमता ने उरई के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पर्यावरण को एक विशिष्ट पहचान दी है जो अत्यंत दुर्लभ है। यही बजह है कि उरई एक जीवन्त नगर है। जनपद के वरिष्ठ पत्रकार अनिल शर्मा एवं के0पी0 सिंह ने मीडिया के माध्यम से हर कदम पर साथ दिया। इन सभी से ऊर्जा प्राप्त कर मैं आज भी सतत जागरूक और सक्रिय रह सका हूँ। सुरेन्द्र नायक, लखनलाल पाल जैसे कलम के सिपाहियों और राजेन्द्र नाथ शर्मा, विनोद गौतम एवं कुमारेन्द्र सिंह का श्रम एवं जागरूकता ही हैं कि मैं पुस्तक के रूप में स्वयं को आपके समक्ष प्रस्तुत कर पा रहा हूँ।

असगर बजाहत, जयदेव, हट्टगड़ी, जुगल किशोर, रवीन्द्र कालिया, जितेन्द्र रघुवंशी, पुन्नी सिंह, महेश कटारे, साहित्य अकादमी अध्यक्ष विश्वनाथ तिवारी, वेदा एवं राकेश जैसी हस्तियों ने मेरे आवास पर विश्राम के कुछ क्षण व्यतीत कर मुझे गौरव दिया है।

विभिन्न माध्यमों से प्राप्त अनुभव एवं चिन्तन प्रस्तुत पुस्तक के

आलेखों में अभिव्यक्त हैं। किसी–किसी आलेख में संदर्भ का जिक्र कर दिया गया है। वस्तुतः मेरा कुछ भी नहीं है। मैंने तो विभिन्न विद्वानों के संचयन का ही कार्य किया है। पुस्तक तीन भागों में है। प्रथम भाग में विभिन्न आलेख द्वितीय भाग में सांविधानिक एवं संसदीय अध्ययन संस्थान, उत्तर प्रदेश, क्षेत्रीय शाखा, विधान परिषद सचिवालय, उत्तर प्रदेश की विचार गोष्ठियों में दिये गये वक्तव्य और भाग तीन में कविता–अकविता के माध्यम से अपनी वेदना स्वयं से ही कह दी है, दूसरा कोई मिला ही नहीं जयशंकर प्रसाद ने बहुत पहले ही कह दिया था–

सच्चा मित्र कहाँ मिलता है,
दुखी हृदय की छाया सा।

(सतीशचन्द्र शर्मा)

cgrj nfu;k dh ryk'k

'बेहतर दुनिया की तलाश में' डॉ0 सतीशचन्द्र शर्मा के कुछ निबन्धों, आलेखों, गोष्ठियों में पढ़े गये पर्चो और कुछ कविताओं का संग्रह है। आखिर, कौन हैं सतीशचन्द्र शर्मा?दरसल डॉ0 शर्मा गान्धी महाविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग के वरिष्ठ प्रवक्ता और अध्यक्ष रहे हैं। उनके चिन्तन का मुख्य विषय मनुष्य के मन का अध्ययन करना रहा है। अपने अध्ययन–अध्यापन के दौरान वे समाज, साहित्य और देश की समस्याओं पर भी गहन चिन्तन करते रहे हैं। स्वभाव से सरल, हँसमुख किन्तु कर्मठता की दृष्टि से वे अपने आप में एक प्रेरक की भूमिका निभाते रहे हैं। दो तरह से व्यक्ति का नाम होता है। एक प्रचार और विज्ञापन के माध्यम से। दूसरे अपने कर्मशील व्यक्तित्व के माध्यम से। शिक्षकता उनकी जीविका का माध्यम था किन्तु, इससे हटकर तमाम साहित्यिक, सामाजिक कार्यो से जुड़कर डॉ0 शर्मा ने अपनी एक अलग ही छबि बनायी थी। उनका विश्वास सिर्फ बातें करने में नहीं ठोस कार्य करने में है। अपने इसी स्वभाव के कारण वे इप्टा से जुड़े रहे और जनपद में 'इप्टा' के माध्यम से समाज की ज्वलंत समस्याओं पर नाटकों में अभिनय और मंचन कराते रहे। जिले में 'इप्टा' आन्दोलन को गति और दिशा डॉ0 शर्मा ने दी। इसमें उनके सहयोगी के रूप में अन्य कई रंग कर्मियों के साथ राज्य पप्पन और स्वाति राज की भूमिका प्रमुख रही है। डॉ0 शर्मा एक रंग कर्मी ही नहीं, अपनी भावनाओं को शब्दों का रूप देने वाला एक विचारक और लेखक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनके इसी तरह के लेखन का परिणाम है।

पुस्तक के तीन खण्ड हैं। पहले खण्ड में विविध विषयों पर समय–समय पर लिखे गये आलेख है। दूसरे खण्ड में विभिन्न गोष्ठियों में दिये गये, वक्तव्य हैं और तीसरे खण्ड में उन्होंने कविताओं के माध्यम से अपनी वेदना को स्वर किये हैं। डॉ0 शर्मा की पारिवारिक पृष्ठभूमि एक ऐसे

मिजाज की रही है जहाँ संगीत तथा अन्य कलाओं की अक्षुण्ण परम्परा थी। कहना न होगा कला के संस्कार व्यक्ति को अन्तर्मुखी और चिन्तन शील बना देते हैं। दरअसल डॉ0 शर्मा की प्रतिभा एक जनपद की सीमा का अतिक्रमण कर प्रान्तीय स्तर पर फैल गयी थी और उन्होंने इस ओर कदम भी खूब बढ़ाए थे। उसी का परिणाम एक नाट्यान्दोलन को जिले में खड़ा करना था।

पुस्तक के पहले खण्ड का विस्तार 16 आलेखों में फैला हुआ है। दूसरे खण्ड में उनके बारह शोध वक्तव्य सम्मिलित है और तीसरे खण्ड में उनकी तेरह कविताएँ संकलित है। इस तरह से यह पुस्तक डॉ0 शर्मा के विविध रचनाओं को एक गुलदस्ता है।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि डॉ0 शर्मा 'इप्टा' से जुड़े रहे हैं इसलिए 'इप्टा' की जो विचारधारा है, उसका जो जनवादी सुझाव है, उसका प्रभाव डॉ0 शर्मा पर भी है, पर अपने व्यक्तिगत अनुभव से मैंने यह जाना है कि डॉ0 शर्मा ने अन्य जनवादियों की तरह कट्टरता या संकीर्णता नहीं है। इसलिए उन्होंने उदार दृष्टि से साहित्य और कला पर विचार किया है। अन्य जनवादियों की तरह उनका भी मानना है कि कलाएँ बेहतर दुनिया की तलाश में लगे और सारे कलात्मक प्रयास इसी ओर होनी चाहिए कि मनुष्य में जो कुछ अच्छाई है वह समाज के काम में आए। उनके पहले और दूसरे खण्ड के सारे आलेख इसी दृष्टि से लिखे गये है।

पहले खण्ड में कुछ निबन्ध तो व्यक्तियों पर है, पर ये व्यक्ति वे है जिन्हें क्रान्तिकारी या साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम करने वालों में गिना जा सकता है। क्रान्तिकारियों में उन्होंने बटुकेश्वर दत्त के बलिदानी जीवन को याद किया है और इसी से प्रेरित होकर उन्होंने 1957 की उस जनविद्रोह के उन तत्वों को तलाशा है जिनके कारण अंग्रेज सरकार की चूले हिल गयी थी और रानी झाँसी के नेतृत्व में पूरे बुन्देलखण्ड में क्रान्ति फैल गयी थी। डॉ0 शर्मा ने 1857 की पृष्ठभूमि शीर्षक निबन्ध इस क्रान्ति की जड़े पूरे देश में मानी है। यह क्रान्ति किसी एक क्षेत्र में ही सीमित नहीं थी।

इसी खण्ड में डॉ0 शर्मा ने बेहतर दुनिया की तलाश में रहे कुछ ऐसे साहित्यकारों की दृष्टि और सृष्टि पर विचार किया है जिनका जीवन और रचनाएँ समाज में एक चेतना जगाने में सफल रहीं। इनमें है बाबा नागार्जुन, दुष्यन्त, राहुल सांत्यायन, सफदर हाशमी, तथा प्रेमचंद। जिन साहित्यकारों पर डॉ0 शर्मा ने विचार किया है, ये सारे साहित्यकार ऐसे रहे हैं जिनमें सामाजिक चेतना की प्रमुखता थी, जो कट्टरता, अंधविश्वास, कुरीतियों से समाज को मुक्त करना चाहते थे। साहित्य जिनके लिए मनोरंजन का एक साधन न होकर समाज में चेतना फैलाने वाला एक माध्यम था। डॉ0 शर्मा अगर ऐसे ही कुछ अन्य साहित्यकारों पर भी योजना बनाकर विचार करते ही उनका यह चिन्तन सांगोपांग हो जाता और उसका एक रूप सामने आता। दरअसल साहित्यकारों पर लिखे गये आलेख समय–समय पर इन लेखकों की जयन्तियों या स्मृति दिवस के उपलक्ष्य में लिखे गये है।

इसी खण्ड में कुछ निबन्ध ऐसे सवालों से प्रेरित है, जो समय–समय पर व्यक्ति को मथते रहते है जैसे 'सामाजिक परिप्रेक्ष्य' में 'मूल्यों' का क्या महत्व है। मूल्य किसे कहते है, मूल्यों का महत्व कितना है, मूल्य किस तरह व्यक्ति की नैतिक चेतना को झकझोरते है, वे समाज के किस तरह नियामक होते है, उसे दिशा देते हैं और उसके नैतिक तापमान को ठीक बनाए रखते है। इसी तरह राष्ट्रीय एकता पर समय–समय पर विचार किया जाता रहा है। एकता विषयक चिन्तन समाज को ऐक्यबद्ध करता है और ऊपरी विभेदों के होते हुए भी अन्तः सलिला की तरह एकता के सूत्र से उसे बाँधे रहता है। दलित चेतना और नारी विमर्श दो ऐसे पक्ष रहे है जो पिछले दो–तीन दशकों से समाज, राजनीति और साहित्य के रंगमंच पर प्रमुखता प्राप्त करते रहे हे। डॉ0 शर्मा ने अपने निबन्ध में यह बताया है कि इसके मनो–सामाजिक कारक क्या हे। उनका यह चिन्तन यथार्थ और व्यवहार दोनों पक्षों पर आधारित है।

'बेहतर दुनिया की तलाश– इसी निबन्ध को इस पुस्तक का शीर्षक

दिया गया है। दरअसल यह निबन्ध न होकर 'भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी द्वारा 2003 में राष्ट्रीय स्तर पर निकाली गयी सांस्कृतिक यात्रा की रपट है। यह यात्रा बुन्देलखण्ड में भी आयी। उरई के पास पिरौना नामक गाँव में उरई इप्टा ने एक नाटक की प्रस्तुति की जिसका शीर्षक था, 'नई सदी की गुलामी नहीं कबूल'। नाट्य प्रस्तुति देखकर इस यात्रा के संयोजक डी0 राजा ने प्रस्ताव रखा कि बम्बई में होने वाले विश्व सामाजिक मंच के चौथे सम्मेलन में इसे प्रस्तुत किया जाए। नाटक की मुख्य थीम है कि पूंजी और समृद्धि में सभी की भागीदारी होनी चाहिए। डॉ0 शर्मा ने अपनी इस रपट के अन्त में लिखा है कि क्या एक दूसरी दुनिया जिसमें मनुष्य मात्र की भागीदारी हो क्या सम्भव है ? एक आशा के साथ उन्होंने अपनी यह रपट समाप्त की है। 'महाजनी सभ्यता' प्रेमचंद का बहुचर्चित लेख है। जिसमें उन्होंने इस सभ्यता से कब मुक्ति मिलेगी यह प्रश्न उठाया है। डॉ0 शर्मा ने इसी प्रश्न पर वर्तमान परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए विचार किया है।

दूसरे खण्ड के सारे लेख राजनीति एवं संविधान से संबद्ध विषयों पर हैं। जैसे 'विचारधारा पर आश्रित राजनीति', 'भारतीय लोकतंत्र का भविष्य', संविधान की धारा 356 की आवश्यकता', स्थायी सरकार का महत्व और संविधान' आतंकवाद और लोकतंत्र में मानवाधिकार' राजनीति में अपराधीकरण, निर्वाचन के समय मीडिया की भूमिका, नक्सलवाद समस्या और समाधान', 'लोकतंत्र में' युवाओं की भूमिका', शिक्षा का महत्व', समाज में महिलाओं की भूमिका'। ये सब ऐसे विषय हैं जिन पर समय–समय पर बहसें गोष्ठियाँ, आयोजन होते रहते है। डॉ0 शर्मा ने इन सभी विषयों पर अपनी दृष्टि से विचार किया है, यह जरूरी नहीं है कि उनकी दृष्टि से आप सहमत हो लेकिन शर्मा जी का यह प्रयास है कि आप इन प्रश्नों पर विचार जरूर करें।

डॉ0 शर्मा के व्यक्तित्व के दो पक्ष है, एक है विचारशील पक्ष और दूसरा है भावनाशील पक्ष। अगर आपको उनका विचारशील पक्ष देखना हो

तो उनके आलेख पढ़िये और भावनाशील पक्ष देखना हो तो उनकी कविताएँ पढ़िये। कविताओं में उनका राग पक्ष व्यक्त हुआ है। इनमें कहीं–कहीं शिल्प का पक्ष कमजोर है पर उनका भावना पक्ष बेहद समृद्ध और मार्मिक है।

कुल मिलाकर यह डॉ0 शर्मा के सृजनशील व्यक्तित्व का प्रारम्भ है। भविष्य में हमें उनकी ओर भी रचनाएँ पढ़ने को मिलेगी।।

इत्यलम्

¼Mk- jke'kdj f}onh½

(साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित)

पूर्व अध्यक्ष हिन्दी द0वै0 कालेज, उरई (उ0प्र0) 285001

दिसम्बर 2017

ofprk dh rdyhQk dk j[kkdu

जाने–माने लेखक, कवि, नाटककार, बर्तोल्त ब्रेख्त ने महाशय 'क' नाम से कुछ लघु कथायें लिखी हैं। एक कथा में महाशय 'क' से एक प्रश्न पूछा जाता है, ''आप जब पहली बार किसी से मिलते हैं, तो पहला काम क्या करते हैं?'' मैं सबसे पहले मन ही मन उसका एक रेखाचित्र बनाता हूँ महाशय 'क' ने उत्तर दिया। प्रश्नकर्ता ने फिर कहा ''और आप चाहते हैं कि आपका रेखाचित्र वैसा ही बने, जैसा वह आदमी हो।'' नहीं मैं चाहता हूँ वह आदमी हूबहू मेरे रेखाचित्र जैसा हो।'' महाशय 'क' ने कहा।

यह ईमानदार आत्मस्वीकारोक्ति है कि पिछले तीन दशकों से सतीश शर्मा से प्रगाढ़ परिचय के बावजूद मैं उनके रचना–संसार से कभी नहीं गुजरा, जब गुजरा तो उनके कृतित्व और व्यक्तित्व की एकरूपता से जो पहली पंक्ति दिमाग में गूँजी वह कबीर की थी ''हद टपै सो औलिया बेहद टपै सो पीर, हद बेहद दोऊ टपै बाको नाम फकीर'' यह एक दिलचस्प तथ्य है कि उनके रचना–संसार से गुजरने के बाद मैंने लिखने से पहले उनके 'आत्मकथ्य' पर निगाह डाली, आश्चर्य मिश्रित खुशी हुई। सतीशजी खुद अपने बारे में कह रहे हैं :

दे मस्त फकीरी तू मुझको, शाहों की भी परवाह न हो।
मैं न किसी का शाह बनूँ, मेरा भी कोई शाह न हो।

मैंने जाने–अनजाने गम्भीरता, सहजता, सरलता और फक्कड़पन को समाहित किए हुए सतीश शर्मा का जो रेखाचित्र शायद पहली नजर में बनाया था, उनका व्यक्तित्व और कृतित्व हूबहू वैसा ही है। यह मेरी पैनी आँखों का नहीं उनकी उदात्तता का ही कमाल है।

उनकी आकांक्षायें, सपने और समूचा जीवन 'बेहतर दुनिया की तलाश' को ही समर्पित रहा है। सांगठनिक रूप से तो वे प्रगतिशील लेखक संघ और 'इप्टा' के माध्यम से प्रेमचन्द की विरासत से जुड़े ही रहे हैं, अपनी

लेखनी भी उन्होंने उसी विरासत को आगे बढ़ाने के लिए ही चलाई है। कला और कलाकार के प्रति उनका स्पष्ट मत है ''बेहतर जीवन मूल्यों व शोषण उत्पीड़न से मुक्त मानव समाज की रचना के सन्दर्भ में कलाकार की सक्रिय व जनपक्षधर भूमिका, संघर्ष को न सिर्फ नया जीवन आवेग प्रदान करती है बल्कि उसे बहुआयामी भी बनाती है।'' उनकी समूची रचना–प्रक्रिया का यही मर्म है। धर्म, साहित्य, समाज व राजनीति विज्ञान के गहन अध्ययन के बाद वे निशानदेही करते हैं कि सामाजिक–विसंगतियों को कर्म और सृजन दोनों ही स्तरों पर दूर करने के ही प्रयास में लगे मिलते हैं। उनकी साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक पक्षधरता इस बात से स्वतः स्पष्ट है कि उनकी रचनात्मक पड़ताल के केन्द्र में हैं, प्रेमचन्द, नागार्जुन, राहुल, सांस्कृत्यायन, भगत सिंह, नारायण गुरु, बटुकेश्वर दत्त, सफदर हाशमी और दुष्यन्त।

सामाजिक एवं राजनैतिक विषयों में विचारधारा आधारित राजनीति, लोकतंत्र का भविष्य, संसदीय प्रणाली, निर्वाचन, युवाओं एवं महिलाओं की भूमिका के साथ–साथ नक्सलवाद पर भी विचार करते हुए वे आदिवासियों एवं वंचितों की तकलीफों को रेखांकित करते हैं।

उरई के लम्बे प्रवास और कवियों और शायरों के निरन्तर साथ ने उनके कवि मन को भी उद्वेलित किया है। यहाँ भी अपनी अन्य रचनाओं की तरह वे सहज और सरल हैं। अपनी सहधर्मिणी के वियोग एवं बेटे की असमय मृत्यु के आघात ने उन्हें ही नहीं उनके बहुत बड़े परिवार को झकझोरा है, लेकिन मुझे उम्मीद है कि आघात से भी शक्ति पाकर वे तर्क और विवेक के संसार को और भी समृद्ध करेंगे।

¼jkd'k½

महामंत्री, भारतीय जननाट्य संघ (इप्टा)

Hkkx 1

vky[k

cVd'oj nRr

''पिछुड़े साथी मिल गये, फिर कभी न बिछुड़ने के लिये। जोड़ा पूरा हो गया, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरू और अब बटुकेश्वर दत्तं। मेरे बेटों अपनी देख–भाल के लिये मुझे भी बुला लो।'' तिरासी वर्षीय विद्या देवी भावावेश में कह उठीं। पूर्ण सैनिक एवं राजकीय सम्मान के साथ बटुकेश्वर दत्त के पार्थिक शरीर को उनकी इच्छुनसार फीरोजपुर में भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव की समाधि के समीप दफना दिया गया। चौतीस वर्ष पश्चात आज वे फिर अपने शहीद साथियों से मिले थे– फिर कभी न बिछुड़ने के लिये।

6 जून 1909 में दत्त का जन्म कानपुर में हुआ था। यहीं के नेशनल थियासोफिकल कालेज में दत्त ने शिक्षा पायी थी। सुरेश भट्टाचार्य के माध्यम से इनका भगत सिंह से सर्वप्रथम परिचय सन् 1923 में कानपुर में हुआ था। बलवन्त नामधारी एक पंजाबी युवक सुरेश भट्टाचार्य के पास जयचन्द्र विद्यालंकार का एक पत्र लाया था। यह बलवन्त ही भगत सिंह था। बटुकेश्वर दत्त और भगत सिंह ने एक दूसरे की ओर देखा, कुछ पढ़ा और फिर एक हो गये, हमेशा के लिये। इस समय कानपुर का 'प्रताप' क्रान्तिकारियों का केन्द्र स्थल था। गणेश शंकर विद्यार्थी के साये में अनेक क्रान्तिकारी तैयार हो रहे थे। भगत सिंह तब 'प्रताप' के सम्पादकीय में काम करते थे। उन्हीं दिनों बालकृष्ण शर्मा ''नवीन'' का लिखा ''विप्लव गायन'' भगत सिंह का प्रिय गान था। इसमें क्रान्तिकारियों की भावना मूर्त थी–

''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आये,
एक हिलोर उधर से आये।

प्राणों के लाले पड़ जाये,
त्राहि त्राहि नभ में छाये।
नाश और सत्यानाशों का,
धुआ–धार जग मैं छा जाये।।

पिता की मृत्यु के बाद सन् 1927 में माँ के साथ बटकेश्वर दत्त को अपने घर वर्धमान के गांव में भी रहना पड़ा। किंतु माँ की इच्छा काशी में रहने की थी। वे काशी आये। पुलिस उनके पीछे पड़ी थी, अतः किसी ने भी उन्हें आश्रय नहीं दिया। दत्त पुनः घर लौट गये, किन्तु माँ के आग्रह पर वे फिर काशी गये। स्थान की खोज में बहन के घर गये पर मकान मालिक ने दरवाजा बन्द कर दिया। विवश होकर वे पास के एक मठ में चले गयें। कुछ दिनों के बाद वहीं माँ का देहान्त हो गया। मातृ–पित् विहीन बटुकेश्वर दत्त को अब बृहत्तर माँ भारत ने बुला लिया था और बटुकेश्वर दत्त भी अपना सर्वस्व अर्पण कर उन्हीं के हो गये।

साइमन कमीशन बहिष्कार आन्दोलन का नेतृत्व करते समय लाहौर में पुलिस के लाठी प्रहार के फलस्वरूप सन् 1927 में पंजाब केसरी लाला लाजपत राय शहीद हो गये। लाला जी की मौत क्रान्तिकारियों को एक चुनौती थी। युवा खून का अपमान था भारत एक बारगी तड़प उठा। भगत सिंह ने दिन दहाड़े पुलिस थाने के पास पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट सान्र्डस को गोली से उड़ा दिया। सान्डर्स की हत्या एक महत्वपूर्ण घटना थी। इससे ब्रिटिश साम्राज्य हिल सा गया। अंग्रेजी सरकार छल–बल हर तरह से स्वाधीनता संघर्ष को कुचलने की तैयारी करने लगी। ऐसे वातावरण में अंग्रेजी सरकार की ओर से क्रान्तिकारियों और मजदूर संगठनों के विरोध में दो कानून ''ट्रेड–डिसप्यूटैड बिल, और पब्लिक सेफ्टी बिल'' केन्द्रीय सभा के सामने आये। इसके विरोध में 8 अप्रैल 1928 को बटुकेश्वर दत्त और भगत ने केन्द्रीय सभा के हाल में दर्शक दीर्घा से दो बम फेंके, ''इन्कलाव जिन्दाबाद'' के नारे लगाये। वे हथियारों से सुसज्जित थे। भागकर बच सकते थे। किन्तु वे खड़े रहे और गिरफ्तार हो गये। उन्होंने

वहाँ पर्चे भी बांटे पर्चे में फ्रांसीसी क्रान्ति का उदाहरण था– "An explosion is necessary to make the deaf hear" (बहरों को सुनने के लिये धमाकों की जरूरत है) पर्चे में बम फेंकने का उद्देश्य भी लिखा था– ''इस बम का विस्फोट हम इसलिए कर रहे हैं कि हमारे पास बहरे कानों को सुनाने के लिये और कोई साधन नहीं है। हमारा मुख्य उद्देश्य यही है कि बहरे सुन लें और सिर फिरे चेत जायें।'' ''सरकार यह जान ले कि जन सुरक्षा और ट्रेड डिसप्यूटैड बिल एवं लाला लाजपत राय की निर्मम हत्या के विरूद्ध जनमानस का विरोध प्रदर्शित करने के अतिरिक्त हम इतिहास को यह भी साक्ष्य देना चाहते है कि व्यक्तियों का दमन करना आसान होता है। किन्तु विचार धाराओं का दमन नहीं किया जा सकता। विशाल साम्राज्य नष्ट हो जाते हैं। लेकिन विचारधारायें बनी रहती है। बौर–वोन और जार का पतन हो गया लेकिन क्रान्तिकारी आगे ही बढ़ते गये।

बड़े दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि हमें, जिनको कि मानव जीवन से प्रेम है और जो एक बड़े गौरवमय भविष्य की कल्पना करते हैं, व्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता के लिये बाध्य होकर मानव रक्त बहाना पड़ रहा है। यह आवश्यक है कि जो मानवता के लिये शहीद होते हैं उनके त्याग से क्रान्ति की वह वेदी बनती है जहां के मानव द्वारा मानव के शोषण का अन्त हो सकेगा, ''इन्कलाब जिन्दाबाद।''

यही पहला मौका था जब भारतीय इतिहास में सर्वप्रथम ''इन्कलाब–जिन्दाबाद'' का नारा लगा था और भारतीय क्रान्तिकारी दल ने जनता का आह्वान इस रूप में दिया था। यहीं से क्रान्तिकारी आन्दोलन ने एक नया मोड़ ले लिया और आगे चल कर सन् 1942 में जन आन्दोलन में बदल गया जिसमें नौ–सेना ने भी हिस्सा बटाया था।

बटुकेश्वर दत्त और भगत सिंह पर मुकदमा चला। वैरिस्टर आसिफ अली उनके वकील थें। दिल्ली जेल में उनका मुकदमा 7 मई को शुरू हुआ और 12 जून 1929 में सेशन में खत्म हो गया। इन लोगों ने एक संयुक्त वक्तव्य दिया जिसमें इन्होंने क्रान्तिकारी दल के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला।

उन्होंने कहा कि दल का उद्देश्य देश में मजदूरों तथा किसानों का एकाधिनायकत्व स्थापित करना है। इस बयान के पहले बहुत से लोगों ने असेम्बली पर बम फेंकने की तथा क्रान्तिकारियों की कड़ी निन्दा की थी। किन्तु इस बयान के बाद लोगों की गलत–फहमियाँ दूर हो गयीं और सभी मुक्त कंठ से क्रान्तिकारियों की प्रशंसा करने लगे। इसके पहले किसी भी क्रान्तिकारी ने अदालत में खड़े होकर इतना विद्वतापूर्ण बयान नहीं दिया था। बटुकेश्वर दत्त, भगत सिंह दोनों को ही आजन्म कारावास की सजा हो गयी। भगत सिंह को मियांवाली और बटुकेश्वर दत्त को लाहौर जेल में रखा गया। अलग–अलग जेलों में रखे जाने पर भी दोनों ने पूर्व कार्यक्रम के अनुसार राजनैतिक बंदियों को मान्यता दिलाने के प्रश्न पर निश्चित तिथि 14 जून 1929 को आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। लाहौर षड़यंत्र में गिरफ्तार अन्य क्रान्तिकारियों ने भी भगत सिंह और दत्त की मांगो के समर्थन में ऐलान कर कहा कि यदि हमारी मांगे नहीं मानी गयी तो वे भी 13 जुलाई से अनशन प्रारम्भ कर देंगे। इनके समर्थन में सारे देश में 30 जून 1929 को भगत सिंह–दत्त दिवस मनाया गया किन्तु सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया अतः निर्धारित तिथि को इस अनशन में अनेक साथियों के साथ यतीन्द्र नाथ दास भी शामिल हुये और अनशन करते हुए ही शहीद हुये।

सान्र्डस हत्याकांड के अभियोग में भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव को फाँसी हुयी। बटुकेश्वर दत्त को दक्षिण भारत की जेल त्रिचनापल्ली में रखा गया और फिर आजन्म अंडमान में निर्वासित कर दिया गया। वे अंडमान में 1938 तक रहे। किन्तु वहाँ भी शांत नहीं बैठे। राजनैतिक कैदियों के अधिकारों की रक्षा के लिये लड़े। 1938 में भारत आने पर भी बटुकेश्वर दत्त को उ0प्र0, पंजाब और बंगाल में जाने की आज्ञा नहीं थी। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय दत्त फिर गिरफ्तार हो गये उन्हें पटना जेल में रखा गया।

भारत स्वतन्त्र हुआ। बटुकेश्वर दत्त भी आजाद हुये (जेल से बाहर आये)। अब शेष जीवन शांति से बिताना चाहते थे। बटुकेश्वर दत्त ने

जीवनयापन के लिये धनोपार्जन की कई कोशिश की किन्तु असफल रहे। उन्होंने बेकरी खोली, बस चलायी, किन्तु बेकार। उन्होंने अनुभव किया कि कहीं न कहीं किसी बिन्दु पर जाकर एक ऐसी मंजिल आती है जब बेईमानी की शरण लेनी पड़ती है अन्यथा व्यापार ठीक से नहीं चल सकता। वे पस्त हो गये। स्वाभिमानी, स्वतन्त्र हृदय बटुकेश्वर दत्त ने अपनी ख्याति को मर जाने दिया। उसे भुनाने की उन्हें कोई इच्छा नहीं थी। अतः उन्होंने अपनी जीवन संगनी अंजलि को स्कूल की नौकरी में भेजा और स्वयं घर संभालते रहे।

1938 में बटुकेश्वर दत्त अंडमान से अकेले नहीं वापिस नहीं लौटे थे, साथ में राजयक्ष्मा आदि कई रोग यमदूत की छाया की तरह साथ लग लिये थे। उनकी अन्तिम बीमारी की शुरूआत अगस्त 1964 में हुई। उन्हें पटना के अस्पताल में भर्ती किया गया। किन्तु कोवाल्ट–रश्मि, देने के लिये उन्हें दिल्ली लाया गया। दिल्ली स्टेशन पर उन्होंने एक मार्मिक वाक्य कहा था– ''मुझे स्वप्न मैं भी कल्पना नहीं थी कि मैं यहाँ अपाहिज की तरह स्ट्रैचर पर डाल कर लाया जाऊँगा।'' उन्हें कैंसर था। जिसने भी सुना सन्न रह गया। देश का साधारण से साधारण तथा बड़े से बड़ा व्यक्ति भी स्तम्भित रह गया। डॉ0 राधाकृष्णन, लाल बहादुर शास्त्री, कामराज, रामकिशन, बिहार के शिक्षा और स्वास्थ्य मंत्री और न जाने कितने क्रान्तिकारी साथी आते और घंटो बटुकेश्वर दत्त से बाते करते। भगत सिंह की माँ सबसे अधिक बैचेन थी। उनका दूसरा पुत्र पहले के पास जा रहा था। वे दत्त के पास ही रहती थी। डॉक्टर और नर्सो की भीड़ हमेशा उनके पास रहती और उनकी देख–भाल करती। अच्छे से अच्छा इलाज किया गया पर 20 जुलाई 1965 को रात 1.50 पर जीवन पंक्षी पिंजड़ा छोड़कर उड़ गया। महाप्रयाण के कुछ पहले वे अपनी चेतना खो बेठे थे। आज विद्या देवी खूब रोयी थी और न जाने कितने तमाम लोग..... दोस्त.....। सारी दिल्ली उमड़ पड़ी थी, भारतीय युवाओं के प्रेरणा स्त्रोत क्रान्तिकारी के अंतिम दर्शनार्थ। पंजाब के मुख्यमंत्री रामकिशन ने बटुकेश्वर दत्त के अंतिम संस्कार के समय उनकी

विधवा पत्नी अंजलि देवी को 5,000/– रूपये की सहायता एवं 250/– रूपये मासिक पेंशन की घोषणा करते हुये कहा– ''उस महान शहीद के चरणों में हमारी यह तुच्छ भेंट है जिसने राष्ट्र को इन्कलाब जिन्दाबाद का नारा दिया।'' इस अवसर पर फिरोजपुर के निवासियों ने भी 27,000/– रुपये एकत्रित करके दत्त परिवार को भेंट करके अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

बटुकेश्वर दत्त का कहना था कि– ''मर तो हम तभी जाते जब हमने असेम्बली में बम फेंका था। पर मृत्यु को हमने धोखा दिया, इसलिये अब जो कुछ हम जी रहे है वह फालतू ही है, हमारा सारा जीवन मुफ्त का है।'' जीवन के सम्बन्ध में इस दृष्टिकोण के कारण अंडमान में रहते हुये और बाद में भी उन्हें एक के बाद एक राज्यक्ष्मा, कैन्सर जैसे रोग लगते गये और वह उन्हें मुस्कराते हुये झेलते रहे।

eY; % lkekftd ifji{; e

वे सामाजिक आदर्श जो स्थायित्व प्राप्त कर लेते हैं अथवा जिन्हें समूह अपने अस्तित्व और कल्याण के लिये आवश्यक समझता है उन्हीं को मान्यताओं का रूप मिल जाता है। मान्यतायें, आत्मानुभूति तथा विकास के लिये मानव के प्रयास और आकांक्षाओं के मूर्तिमान स्वरूप हैं, जिन्हें उसका जीवन एवं समाज प्रस्तुत करते हैं।

मान्यतायें जब समूह की चेतना में स्थायित्व प्राप्त कर अर्न्तमन में प्रविष्ठ हो जाती हैं तो वे मूल्यों का रूप ले लेती हैं। इनका प्रकटीकरण प्रत्यक्ष सम्बन्धों में होता है। स्वतंत्रता, अधिकार, कर्तव्य, कानून और संस्थाओं आदि सभी में मूल्यों की अभिव्यक्ति होती है।

सामाजिक मूल्य सम्बन्धित समाज की विशिष्ट निधि होते है। जिनके विषय में सभी सदस्य जागरूक होते हैं। मूल्य सामाजिक आदर्शो और सामूहिक लक्ष्यों को व्यक्त करते हैं। वे सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित क्रियाओं को निर्देशित एवं नियंत्रित करते हैं।

व्यक्तित्व के गठन एवं गतिशीलता के निर्धारण एवं नियंत्रण में मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरी ओर व्यक्तित्व भी मूल्यों को परिस्कृत करता है। व्यक्तित्व में मूल्यों का जितना अधिक व्यवस्थित प्रवेश होता है, मनुष्य का स्वयं से तथा समाज से सामंजस्य उतना ही सहज एवं सरल होता है। व्यक्तियों के मूल्य अथवा उनकी प्राथमिकताओं की जानकारी प्राप्त करके उनके व्यवहार की व्याख्या की जा सकती है।

सामाजिक संरचना, सामाजिक अर्न्तक्रियायें और व्यवहार इन सभी का आधार सामाजिक मूल्य हैं। जब कभी भी सामाजिक मूल्य बदलते हैं, तदनुसार सामाजिक संरचना एवं सामाजिक संस्थाओं में भी परिवर्तन होते हैं। अतः सामाजिक व्यवहार एवं सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करने में मूल्यों की जानकारी काफी सहायक हो सकती है।

अपनी निरन्तरता के साथ–साथ विविधताओं के कारण भारतीय समाज का विश्व इतिहास में एक विशिष्ठ स्थान है। अतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में सामाजिक मूल्यों का अध्ययन एक रोचक विषय है।

समय–समय पर नवीन सामाजिक मूल्यों के आत्मसात होते रहने के कारण भारतीय समाज की संरचना में परिवर्तन होते रहे हैं। राजनैतिक स्वाधीनता के संघर्ष के फलस्वरूप और आर्थिक पुनर्गठन की इच्छा में जिन नये सामाजिक मूल्यों को भारतीय समाज में स्वीकृति दी है उनका आधार सामाजिक न्याय और समानता हैं। किन्तु इसके विपरीत एक प्रकार का भय भारतीय जन चेतना में, कहीं है, जरूर। कि परिवर्तन की इस प्रक्रिया में प्राचीन सामाजिक मूल्य कहीं नज़र अन्दाज़ न कर दिये जायें ? क्योंकि जाति, सम्भ्रान्तता, आयु और लिंग के आधार पर प्राप्त सुविधाओं को खतरा उत्पन्न हो गया है। कृषि मजदूर, फैक्ट्री कर्मचारी, महिलायें और छात्र भी अब उनकी अवमानना करने लगे हैं जो सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय को स्वीकृति नहीं देते। पिछले वर्षो के आन्दोलनों एवं विविध प्रकार के जनप्रतिरोधों के पीछे जो कारण हैं, उनकी शुरूआत 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही हो चुकी थी– कारण था :– सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन की आकांक्षा।

उदारबादी ब्रिटिश विचारधारा, भारतीय चिन्तकों (राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, बालगंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी आदि) एवं कार्लमाक्स की साम्यवादी विचारों ने तत्कालीन भारतीय विचार प्रक्रिया को प्रभावित किया। फलस्वरूप नये सामाजिक मूल्य भी सामने आये।

सामाजिक पुनःनिर्माण आन्दोलनों के माध्यम से भारतीय समाज समानता के अधिकार की प्राप्ति हेतु जागरूक हो चला था। जिसमें लैंगिक एवं जातीय दोनों प्रकार की समानतायें सम्मिलित थीं। किन्तु यह भी सत्य है कि समानता के इन विचारों का तब भी परम्परागत ताकतों ने पूर्ण शक्ति भर प्रतिरोध किया था।

बालिकाओं को शिक्षित करने एवं दस वर्ष से अधिक की उम्र में उनका विवाह करने की विचारधारा के साथ–साथ धर्मशास्त्रों की पुर्नव्याख्या की चर्चायें भी होने लगीं। ताकि तथ्यपरक मानवीयता की बातों को अमली जामा पहनाया जा सके। शिक्षा के महत्व की स्वीकार किया गया। क्योंकि यही एक साधन माना गया जो महिलाओं एवं अन्य शोषित वर्गों की दशा सुधार सकता था।

महिलाओं से सम्बन्धित निम्न समस्याओं ने ध्यान आकर्षित किया और चर्चायें होने लगीं– बाल विवाह कैसे रोका जाये, विधवा विवाह का आयोजन, महिलाओं की शिक्षा, सामाजिक जीवन में महिलाओं की सहभागिता। शोषित जातियों से सम्बन्धित निम्न समस्यायें थीं– अस्पर्शता, विभिन्न जातियों के मध्य सहभोज का आयोजन और शिक्षा।

अस्पर्शता को समाप्त करने के प्रयासों के साथ–साथ ब्राह्मणेत्तर जातियों ने समानता की प्राप्ति के लिये संघर्ष किया। संघर्ष इतना तीव्र था कि ब्राह्मणों की समकक्षता प्राप्त करने हेतु शिक्षा क्षेत्र में एवं राजकीय सेवाओं में आरक्षण को स्वीकृति मिली।

परिवर्तन की इस प्रक्रिया के दौरान भारतीय समाज ने यह सतत प्रयास किया कि परम्परागत और आधुनिक सामाजिक मूल्यों में किस प्रकार सामंजस्य लाया जाये। किसी भी समाज में मूल्यों का ऐसा सामंजस्य स्थापित करना आसान नहीं होता। भारतीय समाज में यह स्थिति और भी जटिल है क्योंकि आधुनिक सामाजिक मूल्य हमारे समाज के लिये नवीन या अनजान नहीं हैं। यहाँ हम सिर्फ समानता पर ही चर्चा कर रहे हैं जो कोई नया मूल्य नहीं हैं। इसके बावजूद भारतीय समाज के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोण से असमानता एक सुस्पष्ट तथ्य है। इस कथन में विरोधाभस होते हुये भी यही सत्य है।

संविधान द्वारा कानून बनवाकर अस्पर्शता एवं जाति प्रथा की समाप्ति और महिलाओं को समान अधिकार प्रदान कर सिद्धान्ततः असमानता को समाप्त कर दिया गया है। किन्तु व्यवहार में असमानता अपनी निरन्तरता

के साथ आज भी क्यों कायम है। इसके तीन कारण हो सकते हैं –

1. कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास।
2. अपने से ऊँची जाति को सम्मान देना और नीची जाति को हेय समझना।
3. शिक्षा, व्यवसाय एवं जीवन शैली की असमानतायें। उच्च जाति के सदस्य गरीब होने पर भी शिक्षित होते हैं। उनका व्यवसाय सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित होता है। उनकी जीवन शैली औरों की नजर में अनुकरणीय मानी जाती है। इसके विपरीत निम्न जातियाँ अशिक्षित, गरीब एवं अकुशल व्यवसायों में संलग्न होती हैं। गन्दी आदतें, अस्वास्थ्यकर स्थानों में आवास और प्रत्येक प्रकार का भोजन इसके कारण हैं।

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विविध कल्याणकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के बाद भी ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के 80 प्रतिशत से अधिक जनसमुदाय की वास्तविक स्थिति में तनिक भी परिवर्तन नहीं हो सका है। वास्तविकता तो यह है कि जब तक उपर्युक्त तीन तथ्य जीवन्त हैं सामाजिक जीवन में समानता एक आदर्श आशा मात्र ही है।

व्यक्तियों के दृष्टिकोणों में सुगठित परिवर्तन तभी सम्भव है जब हमारी पुरानी पीढ़ी नवीन मूल्यों को पूर्ण आत्मसात कर ले और उनका हस्तान्तरण नई पीढ़ी में हो। प्रत्येक व्यक्ति विकास के लिये उत्सुक हो। अपना भी और अन्य व्यक्तियों का भी जीवन स्तर उठानें के लिये तत्पर हो। पर यह तभी सम्भव है जब राष्ट्रीय उत्पादकता पर्याप्त रूप से अच्छी हो। सकल राष्ट्रीय आय के साथ प्रतिव्यक्ति आय भी पर्याप्त हो। लेकिन ऐसी कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही है।

जनसंख्या की असीमित वृद्धि ने जीवन स्तर को उठाने में बाधा खड़ी की है। औद्योगिकीकरण के बावजूद उच्च उत्पादकता के लिये आवश्यक उच्च स्तरीय कार्य कुशलता, उद्दमिता एवं अनुशासन के मूल्य जन

सामान्य में दृष्टिगोचर नहीं होते। समाज में एक ऐसा वर्ग भी है जो त्वरित अति त्वरित परिवर्तन का आकांक्षी है जिसमें हिंसा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

आधुनिकीकरण की आकांक्षा के फलस्वरूप उत्पन्न सामाजिक गतिशीलता ने प्राचीन सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रतिबद्धतायें खण्डित की हैं। नई संरचनात्मक स्थितियाँ जारी हैं। भूमिकाओं और कार्यो के बटवारे तथा संचालन के लिये नई प्रक्रियायें अपनाई जाने लगी हैं।

सामाजिक गतिशीलता के फलस्वरूप अवैयक्तिक और द्वितीयक सम्बन्धों का विकास हुआ है। अजनवीपन की भावना बढ़ी है। औरों के प्रति ही नहीं। अपने प्रति भी। क्योंकि सामाजिक सम्बन्धों में गहराई रह ही नहीं गई है। यही द्वार है उन्मुक्ति का, स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति का।

आधुनिकीकरण ने हमें मुक्त समाज में प्रवेश करा तो दिया है। किन्तु आज भी आधुनिक व्यक्ति का पैदा होना अभी शेष है। ऐसा व्यक्ति जिसके पास समानता के मूल्य सिद्धान्त में हो और आचरण में भी।

आज भी उच्च जाति में जन्मा व्यक्ति श्रेष्ठ माना जाता है। निम्न जाति का व्यक्त हीन भावना से ग्रस्त होता है। ऐसी धारणायें समानता के मूल्य के विकास में बाधक है। शैक्षिक विकास के बाद भी परिवर्तन कहाँ है? कानून बना देने मात्र से समानता के मूल्य हासिल नहीं होते। जब समाज में श्रम की प्रतिष्ठा एवं अनुराग चारित्रिक विकास के साथ बसुधैवकुटुम्बकम की भावना व्यवहार में प्रतिष्ठापित होगी तभी समानता के सामाजिक मूल्य की प्राप्ति हो सकेगी।

jk"Vªh; ,drk%Lo:i vkj vojks/k

राष्ट्र की महत्वपूर्ण विशेषता है कि यहाँ के निवासी अपने शासन की माँग करते हुए किसी भी विदेशी राज्य द्वारा शासित होने पर विरोध करते है। इस प्रकार राष्ट्रीयता में राष्ट्रजनों की इच्छा निहित होती है। जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय शासन का निर्माण होता है। राष्ट्रीयता के प्रत्यय में यह भी निहित है कि व्यक्ति अथवा सूमह के उद्देश्यों, आकांक्षाओं एवं उपलब्धियों की तुलना में राष्ट्रीय उद्देश्यों एवं उपलब्धियों को प्राथमिकता दी जाये। राष्ट्रीयता के दो पक्ष हैं– कानूनी अथवा बस्तुगत, सामाजिक अथवा व्यक्तिगत।

राष्ट्र की बस्तुगत विशेषताओं का अर्थ है– उसकी सुनिश्चित सीमाऐं, राजनीतिक एकता और विश्व में अन्य राष्ट्रों द्वारा प्राप्त स्वीकृति। राष्ट्रीयता के व्यक्तिगत पक्ष का अर्थ है– उसके देशवासियों में एक देश के सदस्य होने की संचेतना। इससे आन्तरिक एकता को बल मिलता है। यह आन्तरिक एकता तार्किक, मतैक्य एवं सांवेगिक तादात्म्य पर आधारित होती है। जो शासन की कुशलता तथा जनता की प्रमुख आवश्यकताओं की तुष्टि द्वारा निर्मित होती है। इससे ''हम भावना'' (We Feelings) को बल मिलता है, जो राष्ट्रीयता का महत्वपूर्ण अंग है। इसी हम भावना के कारण किसी भी देश के वासी विदेशी शासन का विरोध करते है।

राष्ट्रीयता के उद्भव एवं विकास के लिये सामाजिक व्यवस्था आवश्यक है जो शक्ति, बल प्रयोग तथा अनुनय द्वारा स्थापित की जा सकती है। सामाजिक व्यवस्था के सुचारु रूप से संचालित होने के लिये आवश्यक कि अधिकांश सदस्य एक समान व्यवहारिक प्रतिमानों को स्वीकृत करें। ऐसा करने से समूह में एकता पैदा होती है।

राष्ट्र निर्माण के लिये अपेक्षित है कि इसमें विविधता तथा स्थानीयता के प्रभावों को कम कर एकता में वृद्धि की जाये। यह तभी संभव हो सकता

है जब अल्पसंख्यक समूहों के मन में भय दूर कर सुरक्षा का भाव पैदा किया जाये। इसके अतिरिक्त उनके आर्थिक और शैक्षिक विकास के लिये आवश्यक कदम उठाना अपेक्षित है। राष्ट्रीयता, गरीबी और असुरक्षा के वातावरण में कभी पल नहीं सकती है।

भारत में यद्यपि विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया जाता है फिर भी भारतीय नागरिक एक अनोखी एकता का अनुभव करते है। इस विविधता में एकता का मूल कारण है सीखी हुई आदतें वरीयताऐं, प्रतीक, स्मृतियाँ धार्मिक और सामाजिक मूल्य, जिनकी सहायता से सम्पूर्ण भारतवासी एक दूसरे तक वैचारिक सम्प्रेषण कर सकने में सर्मथ होते है।

यदि देश में रहने वाले विभिन्न वर्ग (जातिगत, धर्मगत, भाषागत) एक दूसरे से परम्परा, लोकरीति, आहार, रहन–सहन आदि सांस्कृतिक माध्यम से जुड़े हो तो इससे राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न होती है और परिपुष्ट होती है।

राष्ट्रीयता की भावना आंशिक रूप से तार्किक किन्तु प्रधान रूप से सांवेगिक होती है। देशवासियों में जब यह बात उच्च मात्रा में होती है तब वे छोटे समूह जैसे भाषा, धर्म, जाति, राजनैतिक या व्यावसायिक समूहों आदि की तुलना में देश के प्रति वफादारी को प्राथमिकता देते है। देश के प्रति अहंवाद का यह भाव देश तथा शासन के तादात्म्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होता है अहंबाद के भाव आन्तरिक व्यवस्था तथा सुरक्षा द्वारा निर्धारित होती है। जिनती अधिक सुदृढ़ आन्तरिक व्यवस्था होगी उतना ही अधिक व्यक्ति सुरक्षा अनुभव करेगा और उसी के अनुरूप राष्ट्रीयता की भावना में वृद्धि हो ताकि विभिन्न समूहों की विषमताओं में कमी आ सके। इससे शासन पर जनता की निर्भरता के साथ–साथ को भी बल मिलता है।

भारत के संदर्भ में राष्ट्रीय एकता के संभावित खतरा की विवेचना करते समय हमें कुछ ज्वलंत प्रश्नों के उत्तर खोलने होगें उनमें से कुछ निम्न हैः–

धर्म और संस्कृति की बात करें तो कहना होगा कि राष्ट्रीय संदर्भ में धर्म की सही व्याख्या नहीं की गई। पश्चिमी राजनीतिज्ञों एवं चिन्तकों के अनुरूप धर्म को परिभाषित किया जाय। सर्वधर्म समभाव के नाम पर अथवा धर्म निरपेक्षता के नाम पर धर्म की राजनीति से पृथक करने के नाम पर यह निर्णय ले लिया गया कि सरकार धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी। धार्मिक मामलों, धार्मिक कर्मकाण्ड या पुस्तकों में जैसा वर्णित ऐसा धर्म न्यायपालिका, कार्यपालिका, संसद या विषमताओं और मानवीय संवेदनाओं एवं राष्ट्रीयता से किस प्रकार ऊपर हो सकता है। स्वाभाविक विकास में बाधा उत्पन्न करने वाली धार्मिक उक्तियाँ जब राष्ट्र से भी बड़ी मान ली जाती है तो चिन्ता की बात है।

भारतीय बाडग्मय में धर्म सर्वांगीण एवं व्यापक शब्द है। धर्म शब्द में हमारा कर्तव्य, आचरण, आचार–विचार, रीति–रिवाज, सांस्कृतिक संहिता, नीति संस्कार जहाँ तक कि पूरी जीवन प्रणाली समाहित है। धर्म की ऐसी व्याख्या स्वीकृत की जानी चाहिये ताकि साम्प्रदायिक प्रदूषण से मुक्ति मिल सके।

प्रत्येक देश की एक सांस्कृतिक पहचान होती है। सांस्कृतिक पहचान से राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होता है। संस्कृति का सम्बन्ध अन्तरात्मा से है। देश काल और परिस्थितियों के आधार पर विभाजन रेखा खीचनें का ही परिणाम है– भाषा, क्षेत्र, जाति और उपासना पद्धति के आधार पर अलग–अलग अधिकारों की माँग।

जब राष्ट्र का नेतृत्व संवेदनशीलता खो देता है तथा भ्रष्टाचार, अत्याचार अनाचार एवं शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने तक इन्कार करने लगता है। जब हम मानसिक रूप से संज्ञाहींन एवं बौद्धिक रूप से निष्प्राण हो जाते हैं तब राष्ट्र को भी निष्प्राण होने में कितनी देर लगती है। और आज हम ऐसी ही संकटपूर्ण घड़ी से गुजर रहे है।

समाज में जो कुछ भी हो रहा है उस पर ईमानदारी के साथ सही प्रतिक्रिया करने की सामर्थ्य हमारा देश खोता जा रहा है। किसी भी देश के

लिये खतरा और भी बढ़ जाता है जब एक राजशाही का प्रीवीपर्स समाप्त करके पुनः नवीन प्रीवीपर्स पाने वालों को एक नई जमात पैदा की जाने लगती है जनता को तमाम अपराधियों में से किसी एक को अपना प्रतिनिधि चुनने के लिये मजबूर होना पड़ता है। जब राजनीतिज्ञों की खतरनाक गतिविधियों पर अंकुश लगा सकने में उस देश का संविधान, विधान, प्रशासन और व्यवस्था अपने आप को असमर्थ पाती है। जब औसत व्यक्ति पर अंकुश लगाने के साथ–साथ राजनीतिज्ञ रूप से महत्वपूर्ण व्यक्तियों पर जब जनता का अंकुश नहीं लग पाता तब उन शाश्वत मूल्यों की रक्षा खतरे में पड़ जाती है जो एक राष्ट्र की स्थिरता के पोषक होते हैं।

क्या आज की जनता अपना मनचाहा प्रतिनिधि चुनने के लिये स्वतंत्र है। जनता की इच्छा के स्थान पर माफिया वर्ग की इच्छा प्रमुख है। लोकतंत्र का मतलब क्या सिर्फ वोट डालने या प्रतिनिधि चुनने मात्र से है? वोट की इस राजनीति और अस्थाई सरकारों ने देश की क्षेत्रीयता, भाषाई, जातीय एवं साम्प्रदायिकता के विभिन्न खेमों में बाँट दिया है। और इन सबके बीच में भारतीयता स्वप्न बनकर रह गई है।

गरीबी किसी भी समाज के लिये किसी भी राष्ट्र के लिये एक अभिशाप है। रोजी रोटी के चक्कर में उलझा आदमी क्या जानें राष्ट्रीयता क्या होती है। जिस देश की 45 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी की जीवनरेखा के नीचे जीवन बिता रही हो। वह जानती ही नहीं है कि 15 अगस्त कब आता है, 26 जनवरी कब निकल जाती है। राष्ट्रीय त्योहार क्या सिर्फ सरकार द्वारा मनाये जाने के लिये हैं।

होली, दीपावली, ईद की तरह जब सम्पूर्ण भारतीय समाज इन राष्ट्रीय त्योहारों को मनायेगा, तभी राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा। आर्थिक स्वतंत्रता, राजनैतिक स्वतंत्रता को बल प्रदान करती है।

देश का शैक्षिक पर्यावरण शैक्षिक मूल्यों से हींन एवं अराजकता से परिपूर्ण है। छात्र दिग्भ्रमित हैं। विभिन्न आन्दोलनों के माध्यम से अपनी कुंठा का प्रदर्शन करने में संलग्न। कुंठित छात्रशक्ति देश की राष्ट्रीय

एकता के लिये सबसे बड़ा खतरा है। इसका कारण है– शिक्षा के क्षेत्र का आज भी उपेक्षित होना। मुदालियर कमीशन से नयी शिक्षा नीति तक कोई भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं योजना विकसित एवं क्रियान्वित नहीं हो सकी है। आज जरूरत है, स्थायी शैक्षिक योजना आयोग की जो देश की सम्पूर्ण शिक्षा नीति को नियंत्रित एवं संचालित करें। शैक्षिक योजना आयोग क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप विविध क्षेत्रों में शिक्षण प्रशिक्षण तकनीकि, व्यावसायिक एवं विधि स्तरीय योजना का नियंत्रक, संगठन, और संचालन करें। छात्रों को शैक्षिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत मार्गदर्शन मिले। देश की विशाल एवं प्रवल छात्र शक्ति को नियंत्रित एवं अनुशासित करने के लिये शिक्षा क्षेत्र से पेशेवर राजनीतिज्ञों को दूर रखा जाये।

आर्थिक, शैक्षिक एवं तकनीकि क्षेत्र में पिछड़े भारत की अपनी एकता के संदर्भ में एक किरण आशा की जरूर है। भारतीय जनसमुदाय की जागरूकता, 80 प्रतिशत साक्षरता वाले भारतीय जनसमुदाय के पास राजनैतिक भेदभाव करने वाला वह विवेक है जो विश्वविद्यालय की डिग्री रखने वालों के पास नहीं है। यह विशाल जनसमुदाय साक्षर न सही किन्तु शिक्षित है। जब कभी भी इनको धर्म निरपेक्ष, आर्थिक, राजनीतिक, साम्प्रदायिक तथा जाति पर आधारित मुद्दों के बीच चुनाव करने को कहा गया है तो उन्हौने सदैव राष्ट्रीय एवं धर्म निरपेक्ष तत्वों के पक्ष में निर्णय दिया है। इसके लिये 1967, 1971, 1977, 1980, 1991 तक में हुए चुनावों से अच्छा साक्ष्य और क्या हो सकता है।

भारत को आगे ले जाने में भारत की आन्तरिक एकता को बल प्रदान करने में निरक्षर लोग असफल नहीं हुए हैं बल्कि इसके उत्तरदायी वे शिक्षित तथा नगरीय लोग हैं जिन्होनें भारत को आगे ले जानें की सक्षम विचारधारा का निर्माण ही नहीं किया। इन तथाकथित शिक्षित महानगरीय लोगों ने समन्वित एवं सर्वांगीण राष्ट्रीय विकास नीति के स्थान पर स्वयं के छुद्र स्वार्थों को ऐसी प्रधानता दी है कि उनके आगे समाज तो क्या राष्ट्र भी बौना नजर आता है।

vkpk;Z nk.k ugh] pk.kD; pkfg,

भारतीय मनीषी अपने चिन्तन और विद्वता के लिए प्रसिद्ध रहे है। प्राचीन काल में ग्रीक, मिश्र, चीन एवं फारस की खाड़ी के देशों के विद्वान, भारत में अध्ययन हेतु आया करते थे। तक्षशिला, नालन्दा कांजीवरम तत्कालीन समय की प्रसिद्ध शिक्षण संस्थायें थी। चरक, सुश्रतु जैसे आयुर्वेद के विद्वानों के साथ–साथ गणित एवं ज्योतिष में, बराहमिहिर, भास्कर, आर्यभट्ट ने वैज्ञानिक चिन्तन को प्रभावित एवं विकसित किया था किन्तु वैज्ञानिक शिक्षण और चिन्तन की यह प्रक्रिया निरन्तरता प्राप्त नहीं कर सकी। मध्यकाल में हिन्दुओं के समान ही मुस्लिम समुदाय भी परम्परावादी था। शिक्षा के क्षेत्र में धर्म दर्शन एवं साहित्य को प्रधानता प्राप्त थी। संस्कृत विद्यालय, मकतब–मदरसे शिक्षा के केन्द्र बिंदु रहे।

19वीं सदी में ईसाई मिशनरियों के प्रयासों से आधुनिक शिक्षा को जब भारत में प्रोत्साहित किया जा रहा था तब भी मानविकी एवं दर्शन ही अध्ययन के प्रमुख विषय थे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद महान भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु, वी.सी. राय और सी.बी. रमन के निजी प्रयासों से आधुनिक एवम् वैज्ञानिक चिन्तन का प्रारम्भ भारत में सम्भव हो सका।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा तंजौर में 1784 में पहला स्कूल खोला गया। इसी समय वारेन हैस्टिंग ने भी कलकत्ता में एक मदरसा स्थापित किया था। अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के पूर्व 1814 में कलकत्ता हिंदू कॉलेज की छात्र संख्या 70 थी जो अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने पर 1829 में 421 तक हो गई थी। इस तथ्य से प्रभावित 1835 की लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति ने भारतीय शिक्षा के विकास में एक दूरगामी परिवर्तन की आधारशिला रखी। ब्रिटिश सरकार को विविध शासकीय कार्यों के लिये बाबुओं की आवश्यकता थी। मिशनरियों द्वारा सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा भी बाबू बनाने के कारखाने स्थापित किये जाने लगे। परिणाम

सौ साल बाद शिक्षित बेरोजगारों की समस्या पैदा होने लगी। तब से आज तक इसका निदान खोजने के सतही और इसीलिये निष्फल प्रयासों के फलस्वरूप सुरसा के मुख सी फैलती इस समस्या ने सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली और व्यवस्था पर ही एक प्रश्न लगा दिया है।

गोखले, एनीबीसेन्ट, लाजपत राय और बाद में महात्मा गांधी ने भी ऐसी राष्ट्रीय शैक्षिक पद्धति की वकालत की थी जो युवाओं में राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहित करे। मातृभूमि के प्रति समर्पित एवम् सांस्कृतिक विरासत पर गर्व करना सिखाये। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु मातृभाषा में शिक्षण को मान्यता दी गई। वैज्ञानिक शिक्षण एवम् अनुसंधान के साथ–साथ व्यावसायिक और तकनीकि शिक्षण की आवश्यकता पर जोर दिया गया ताकि आर्थिक विकास को गति देकर गरीबी का उन्मूलन किया जा सके। देश के नागरिकों का जीवन स्तर सुधारा जा सकें।

चेतना, समृद्धि और विकास का रास्ता शिक्षा के गलियारे से ही गुजरता है। इसी स्वीकारोक्ति के कारण समय–समय पर अनेक शिक्षा कमीशन बनाये गये किन्तु उनकी सिफारिशों को आंशिक ही लागू किया जा सका। स्वतंन्त्रता के बाद आज तक कोई सार्वभौमिक शिक्षा नीति नहीं बन पाई। जिसकी कल्पना कभी गोखले ने की थी। आज शिक्षा जगत में अराजकता की स्थिति है। सबसे बुरा हाल हैं प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का है जो शिक्षातन्त्र का एक प्रमुख अंग ही नहीं बल्कि मेरुदण्ड है। शिक्षा विकास के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालय राष्ट्रीय महत्व की संस्थायें हैं।

15 से 18 वर्ष की आयु समूह के छात्र, शिक्षा समाप्ति के बाद उच्च अध्ययन हेतु विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेते हैं अथवा किसी व्यवसाय का चयन एवं प्रशिक्षण प्राप्त कर जीवनधारा में प्रवेश करते हैं। अधिकांश छात्र किसी व्यवसाय का चयन एवं प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। अधिकांश छात्र किसी व्यवसाय में न जा सकने की विवशता के कारण उच्च शिक्षा में प्रवेश लेते हैं। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि माध्यमिक शिक्षा के साथ–साथ उच्च शिक्षा व्यवस्था भी इस देश में ध्वस्त हो चुकी है। अध्यापकों की कमी,

अत्यधिक एवं अनियत्रित छात्र संख्या, विद्यालयों की बेहद कमी, शिक्षकों एवं छात्रों की किसी न किसी राजनैतिक दल से प्रतिबद्धता, नैतिक एवं जीवन मूल्यों का शिक्षा मंदिर से तिरोहित हो जाना, अवैज्ञानिक पाठ्यक्रम दूषित परीक्षा प्रणाली, पाठ्योत्तर क्रियाओं से दूरदराज तक विद्यालयों की सम्बद्धहीनता इन सबने मिलकर सम्पूर्ण शिक्षा जगत में अनुशासनहीनता अराजकता एवं दिशाहीनता के हालात पैदा कर दिये हैं। डिग्री कॉलेजों में अध्ययन अध्यापन के स्थान पर सिर्फ प्रवेश होता है या फिर परीक्षायें और पूरा साल ऐसे ही गुजर जाता है। विद्यालय में विभिन्न जाति धर्म, वर्ग, क्षेत्र एवं गरीब–अमीर सभी स्तरों के छात्र एक साथ बगैर किसी भेद–भाव के शिक्षा ग्रहण करते हैं। इस अर्थ में विद्यालय लघु समाज होता है या समाज का दर्पण। किन्तु आज ऐसा नहीं है, हर वर्ग, क्षेत्र, गरीब और अमीर एवं इलीट लोगों के लिये अलग–अलग तरह के विद्यालय है। जहां शिक्षा की विभिन्न प्रकार की व्यवस्थायें है। ऐसे विद्यालयों में लघुसमाज या समाज गायब हो गया है। शिक्षक, छात्र एवं विद्यालय के पर्यावरण की पारस्परिक अतःक्रिया से निर्गत सुगंध सम्पूर्ण समाज को हर्षित करती है। खेद हैं कि आज इस सुगंध के लिये हम तरस रहे हैं।

बालकों के व्यक्तित्व विकास में विद्यालय के साथियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। विभिन्न स्वभाव, प्रकृति एवं गुण दोषों से युक्त सहपाठियों के सम्पर्क में रह कर बालक को मानव स्वभाव का वास्तविक ज्ञान होता है। विद्यालय में सिर्फ उन्हीं छात्रों को प्रवेश मिलना चाहिये जिन्हें पढ़ना है जिनके मन में शुभ संस्कारों की कद्र नहीं है, समाज में पागल कुत्तों की तरह दुर्गुणों को फैलाने में जिन्हें शर्म नहीं आती ऐसे लड़कों को ईश्वर यदि स्कूल में जाने की बुद्धि ही न दे तो कितना अच्छा हो। साथ ही स्कूलों की भी क्या यह जिम्मेदारी नहीं है कि वे ऐसे निठल्ले और आवारा लड़कों को स्कूलों में न रहने दें ? और आरोग्य मन्दिर में तो ऐसे लोगों का रखा जाता है जिन्हें चंगा होने की इच्छा होती है। जिन्हें सुधरना नहीं है उन्हें कोई भी स्कूल कैसे सुधार सकता है। यही कारण है कि विद्यालय के पर्यावरण का भी महत्वपूर्ण स्थान

है। विद्यालय के नियम और अनुशासन में रहकर बालक अपने आचरण पर नियन्त्रण करना सीखता है। स्कूल का वातावरण जिस प्रकार का होगा तदनुरूप बालक सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों की शिक्षा ग्रहण करता है और वैसा ही उसका मानसिक और संवेगात्मक विकास होता है।

समाज में व्याप्त गुटबाजी छुद्र राजनीतिक स्वार्थ भटकाव और बिखराव का पूरा असर अब तो शिक्षा मन्दिरों पर भी परिलक्षित होने लगा है। हताश एवं कुण्ठा और लक्ष्य हीनता की स्थिति में नैतिक आदर्श न जाने कहां चले गये हैं। शिक्षा का प्रचार प्रसार तो हुआ किंतु विद्यालय में सीमित स्थान भारी भरकम फीस एवं प्रवेश हेतु अनुचित तरीकों का समावेश इन सबने मिलकर शिक्षा स्तर पर अवमूल्यन ही किया है। कोढ़ में खाज का काम किया नकल के माहौल ने। डिग्रीधारी साक्षरों की पूरी की पूरी एक पीढ़ी तैयार हो गई है। लक्ष्य प्राप्ति के लिये साधनों की पवित्रता को विस्मृत कर केवल लक्ष्य प्राप्त की और सम्पूर्ण शक्ति व्यय की जा रही है, परिणाम समाज में व्याप्त अफरा–तफरी का यह माहौल विद्यालयों में भी समावेश कर चुका है। महाविद्यालयों में राष्ट्रीय समस्याओं और सामाजिक विषमताओं पर अब बहस नहीं होती है। छात्र को सिर्फ एक चिंता है मैं क्या बनूंगा। कैरियर की प्राप्ति के लिये वह कुछ भी कर सकता है। वर्तमान में नकल विरोधी अध्यादेश से शैक्षिक माहौल बनाने में आंशिक सफलता की उम्मीद अवश्य है। इस अध्यादेश की पूर्ण सफलता के लिये यह आवश्यक है कि शैक्षिक पाठ्यक्रम के साथ–साथ पाठेयत्तर क्रियाओं को भी पर्याप्त स्थान दिया जाये। शासन का यह भी दायित्व है कि विद्यालयों और शिक्षकों की कमी को दूर करके छात्र–शिक्षक अनुपात का स्वयं भी पालन करें और पालन करवायें। साल भर परीक्षायें ही न होती रहे अध्ययन भी हो, तभी नकल अध्यादेश सार्थक परिणाम दे सकेगा।

शिक्षक बालक के लिये आदर्श होता है। जिस प्रकार बालक परिवार में रहकर माता–पिता से तादात्म्य स्थापित करता है उसी प्रकार स्कूल में शिक्षक से। किन्तु ऐसा तभी होता है जब शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली हो। विविध कारणों से आज शिक्षक छात्रों का मार्गदर्शक नहीं

हैं। शिक्षक छात्रों को नेतृत्व प्रदान नहीं कर पा रहे हैं। राजनीतिक स्वार्थपरता एवं गुटबाजी ने शिक्षक को सहृदयता, सहयोग एवं निर्भयता से दूर कर दिया है। अध्ययन अध्यापन से विलग शिक्षक द्रोणाचार्य के समान जब एकलव्य से अंगूठा माँगता हैं तो सारी मर्यादायें धूल धूसरित हो जाती है।

भरे दरबार में अपने ही शिष्यों द्वारा द्रोपदी का चीर हरण देखने की क्या मजबूरी हो सकती है ? क्या सिर्फ आजीविका ? राजकीय वैभव की आकांक्षा ने निर्भयता छीन ली, सत्य बोलने की सामर्थ्य हर ली, ऐसे ही द्रोणाचार्य हर युग में महाभारत का कारण बनते हैं। स्वयं को ही नहीं समाज को भी भस्म कर देते हैं। जबकि त्यागी तपस्वी, अध्यवसायी जाग्रत एवं राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत चाणक्य नवीन समाज एवं राष्ट्र का पुनः निर्माण करता है। आज हमें आचार्य द्रोण नहीं, चाणक्य चाहिए। अब तक विभिन्न राजनैतिक दल निजी स्वार्थ के लिये युवा पीढ़ी को भटकाव के रास्ते पर लाकर देश को अंधेरी सुरंग में धकेल दे रहे है। नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के अवमूल्यन के बाबजूद नैतिक आदर्शों के प्रतिमान के रूप में शिक्षक आज भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अतः शिक्षक का दायित्व है कि वे समाज का मार्ग दर्शन करें, भटकी हुई युवा पीढ़ी को राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्रगति में सहभागी बनाने के लिये रचनात्मक दिशा दें यह दिशा शिक्षक ही दे सकता है।

आवश्यकता है कि शिक्षक अपनी अस्मिता को पहचान कर स्वयं का मूल्यांकन करें कि वह सिर्फ वेतन भोगी प्राणी नहीं है बल्कि राष्ट्रीय ही नहीं समस्त मानवीय अधिकारों और मान्यताओं का सजग प्रहरी है। शिक्षक समाज की संपूर्ण चेतना एवं ऊर्जा का अक्षय स्रोत है। भावी पीढ़ी का निर्माता नियन्ता एवं आदर्श है।

nfyr lpruk% eukl kekft d i{k

भारत उप–महाद्वीप एक ऐसा महाजाल है जिसमें अनेक नस्लें और जन भटकते हुये आये और इसमें स्वतः फंस कर रह गये। प्रत्येक समाज का विकास यहाँ अपने ढंग से हुआ। विभिन्न पंथ और प्रथाओं वाले विभिन्न लोग अपेक्षाकृत अधिक स्थिरता के साथ यहाँ बसे रहे। उन्होनें जाति प्रथा का विकास किया जिसे एक विशेष परिस्थिति की आवश्यकता के अनुरूप एक इकाई के रूप में सामूहिक प्रतिक्रिया कहना चाहिये।

जाति प्रथा के कारण एक ही सामाजिक व्यवस्था में रहते हुये एकता और विविधता दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हुई है। कोई भी आगन्तुक समाज जाति प्रथा के कारण भारतीय समाज में क्रान्ति पैदा करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सका। इस व्यवस्था में कुछ जातियाँ जाति सीमान्त में इतना नीचे है कि वे समाज के सामान्य घेरे से बाहर मानी जाती हैं और तद्नुसार उन्हें अतिशय निषेधों का सामना करना पड़ता है किन्तु यह जाति व्यवस्था का आनुषांगिक पक्ष है, न कि आवश्यक।

प्रत्येक जाति अपने में एक पूर्ण इकाई है। कुछ बातों में अन्य जातियों से इनकी प्रथायें भिन्न होती हैं और कभी–कभी इन प्रथाओं में विरोध भी मिलता है। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति के व्यक्ति के साथ खान–पान का सम्बन्ध रख सकता है या नहीं, इसके बारे में अलिखित विध ाान है जिसका सभी को ज्ञान होता है। यहाँ तक कि धर्म परिवर्तन से भी जाति–व्यवस्था में फर्क नहीं आता क्योंकि मुसलमान भी जो इन प्रथाओं को सिद्धान्त रूप में नहीं मानते प्रायः व्यवहार में इसका पालन करते हैं। कई जातियाँ तो ऐसी भी हैं जो हिन्दू भी है और मुसलमान भी। जब कोई सुधारक संगठन हिन्दू धर्म से अलग होता है और जाति प्रथा को तोड़ देता है तो उसकी एक नई जाति बन जाती है। भारतीय यहूदियों और ईसाइयों में भी जाति या उसके मिलते जुलते रूप मिलते हैं।

इस प्रकार हिन्दू समाज में जाति प्रथा अद्वितीय है। यहाँ पर हर व्यक्ति किसी जाति विशेष में ही पैदा होता है। जाति जहाँ व्यवसाय के चयन को प्रभावित करती है वहीं एक सीमा तक जाति का सम्बन्ध व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा से भी है। हिन्दू समाज में जाति संस्तरण के स्तर पर शूद्र सबसे अन्तिम सीढ़ी पर है।

सन् 1935 में भारत सरकार द्वारा प्रथम बार इन जातियों की सूची जारी की गई। बाद में सन् 1950 में भारतीय संविधान में इस सूची को शामिल किया गया। वे जातियाँ जिन्हें संविधान के अन्तर्गत सूचीबद्ध किया गया उन्हें 'अनुसूचित जाति' शब्द से सम्बोधित किया गया। महात्मा गांधी ने इन्हें 'हरिजन' शब्द से सम्बोधित किया था। स्वतंत्रता के पश्चात समानता और सम्मान के लिये संघर्षरत इस वर्ग ने आक्रोशित होकर अपने को 'दलित' शब्द से सम्बोधित किया जाना पसन्द किया।

अनुसूचित जाति की जनसंख्या भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या का 15.7 प्रतिशत है। हमारी जनसंख्या का यह बड़ा भाग विभिन्न ऐतिहासिक सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से पिछड़ा एवं अशिक्षित है। स्वाधीनता के इतने वर्ष बाद भी और संविधान से प्रदत्त सुविधाओं एवं सुरक्षा के प्राविधानों के होते हुये भी दलितों की दशा अच्छे जीवन प्रतिमानों से आज भी काफी दूर है। यह समुदाय अभी भी विविध सामाजिक अन्यायों को सहन करने के लिये मजबूर है।

आजादी के पश्चात् यद्यपि दलित जाति के हजारों परिवार निम्न वर्ग से मध्यम स्तर तक ही नहीं बल्कि उच्च स्तर तक आ गये हैं, फिर भी इनको वह सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई है जिसकी उन्हें आकांक्षा और अपेक्षा है। विधायक एवं सांसदों के रूप में राजनैतिक ताकत हांसिल करने के साथ ही प्रशासनिक स्तर पर भी दलितों ने अपनी उपस्थिति का अहसास कराया है। दलित जातियों में यह बड़ा परिवर्तन उनकी शिक्षा और आर्थिक स्तर में वृद्धि के कारण नगरों में दृष्टिगोचर होता है किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन होना अभी शेष है। ग्रामीण क्षेत्रों में जाति के अंकुर अपनी पूर्ण विभीषिका के साथ आज भी विद्यमान है।

दलित समाज पर किये गये विभिन्न मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक शोधों से प्राप्त निष्कर्ष वस्तुतः काफी चकित करने वाले है। सामाजिक परिवर्तन की एक स्पष्ट और तीव्र आकांक्षा दलित जातियों में जाग्रत हो चली है। यह भावना ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा उग्र होकर सामाजिक क्रान्ति का आवाहन करने लगी। सदियों से पीड़ित शोषित एवं अवमानना सहने को मजबूर यह वर्ग अब शिक्षित होकर अपने सामाजिक अधिकारों की चर्चा करने लगा है। इसका कारण क्या है ? बढ़ते शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और साथ ही जनसंचार माध्यमों की बहुलता ने दुनियाँ को छोटा कर एक इकाई में बदल दिया है। सामाजिक न्याय के आधार पर समानता के अधिकार की माँग और वैयक्तिक स्वतंत्रता की अवधारणा ने जाति व्यवस्था पर चोट की है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य और उद्देश्य राजनीति की दलदल में न जाने कहाँ तिरोहित हो गये। इस राजनैतिक स्वार्थपरिता का सबसे ज्यादा खामियाजा भुगता है दलित समुदाय ने। इनका सबसे ज्यादा राजनैतिक शोषण हुआ है। इसी वर्ग के अगुआ लोगों की भूमिका भी प्रशंसा के दायरे में नहीं आती। इनके माध्यम से संसद और विधानसभाओं में पहुँचना कितना अधिक आसान है। इसी उपादेयता को ध्यान में रख कर इस विशाल जन समुदाय को स्वाधीनता के बाद से अब तक केवल मूर्ख बनाया जाता रहा है। सामाजिकता, समता, न्याय और जनवादी मान्यताओं के सृजन एवं विकास के लिये तिलमात्र भी तो प्रयास नहीं किया गया है। साधनहीन, विघटित और दिग्भ्रमित जन शक्ति में सामाजिक बदलाव की सक्षम सोच का विकास कैसे हो? इस दिशा में पूरे देश की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक संस्थाओं ने अभी तक कोई सार्थक पहल नहीं की है।

सामाजिक प्रगति में सबसे बड़ी दो बाधायें हैं– (1) समानता की मरीचिका और (2) अशिक्षा से उपजा मानसिक निठल्लापन। भारतीय समाज सिद्धान्त में तो समानता पर बल देता है लेकिन व्यवहार में असमानता अपनी सम्पूर्ण प्रबलता के साथ विद्यमान है। जाति, उपजाति और इनकी भी

उपजातियों के मकड़जाल में उलझे हमारे समाज पर हमारे ही मनीषियों ने समय–समय पर प्रबल आघात किये हैं। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, शिवनाथ शास्त्री के प्रारम्भिक प्रयासों के बाद दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने जातिगत असमानता के खिलाफ आवाज बुलन्द करके दलित उत्थान की दिशा में सार्थक पहल की थी। विवेकानन्द, एनीबीसेन्ट और फिर इसी क्रम में महात्मा गांधी के सक्रिय और व्यवहारिक कार्यकलापों ने दलितों के विकास और उत्थान को नई दिशायें दी। पूना के ज्योतिराव फूले (1849) केरल के नारायण गुरू (1854–1928) तत्पश्चात डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के प्रयासों ने जातीय भेद समाप्त करने एवं दलितों के विकास हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये।

जातिगत एवं सामाजिक असमानता के तीन कारण खोजे गये– कर्म और पुर्नजन्म में विश्वास, अपने से ऊँची जाति के लोगों को सम्मान देना और अपने में नीची जाति को हेय समझना और शिक्षा, व्यवसाय एवं जीवन शैली की असमानतायें।

उच्च जाति के लोग गरीब होने पर भी शिक्षित होते हैं। उनका व्यवसाय सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित माना जाता है। उनकी जीवन शैली औरों की नजर में अनुकरणीय होती है। इसके विपरीत निम्न जातियाँ अशिक्षित, गरीब और इसीलिये अकुशल व्यवसायों में संलग्न होती हैं। गन्दी आदतें, गन्दे स्थानों में आवास और कुसंस्कार इसके कारणों में गिने जा सकते हैं।

अस्पर्शता जाति व्यवस्था का कोढ़ है। किन्तु अध्ययनों से प्राप्त परिणामों में यही तथ्य विशेष गौर करने लायक है कि दलित जाति का ग्रामीण पुरूष वर्ग उपजातीयता का पक्षधर है और अस्पर्शता की बुराई को बनाये रखना चाहता है। इसके विपरीत दलित जाति का ग्रामीण महिला वर्ग अधिक प्रगतिशील, क्रान्तिकारी और समानता का पोषक है। इन्हें अस्पर्शता स्वीकार नहीं है। दलितों में भी ग्रामीण वर्ग हमारे भारत का सबसे अधिक दलित वर्ग है। जिस दिन यह समूह अपनी अस्मिता को पहचानेगा इस

महान देश में शोषण के खिलाफ एक क्रान्ति होगी और सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आयेगा।

समकालीन भारतीय समाज में समानता की मांग को मजबूती से रखने के साथ–साथ उपजातीयता और दलित समाज में भी अस्पर्शता को बनाये रखने की अवधारणा का कारण स्पष्टतः अशिक्षा, गरीबी एवं सांस्कृतिक पिछड़ापन है। इस समस्या का समाधान किये बगैर सामाजिक परिवर्तन और समानता के अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति दिवास्वप्न मात्र है। सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण कारक के रूप में संस्कृति का विशेष महत्व है। विचार, आदर्श और श्रम के प्रति रचनात्मक अभिवृत्ति का सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान है और इसका एक मात्र स्त्रोत है शिक्षा।

आधुनिक अभिवृत्तियां के निर्माण में आर्थिक विकास सम्बन्धी कारकों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। नोंन, तेल, लकड़ी की चिन्ता में डूबा आज आदमी क्या जाने परिवर्तन और विकास किसे कहते हैं। भाग्य, कर्म और पुर्नजन्म की जंजीरों की सांस्कृतिक विरासत से जकड़ा जनमानस, स्पष्ट है कि अपनी गरीबी से भी सन्तुष्ट है। तभी तो सामाजिक परिवर्तन और क्रान्ति जैसी आधुनिक अभिवृत्तियों से उसका दूर का भी नाता नहीं है। बल्कि परम्परागत कुरीति और जाति प्रथा के कोढ़ के रूप में छुआछूत का समर्थन ही करता है।

किन्तु यहाँ एक तथ्य गौर किये जाने लायक है कि आर्थिक–सम्पन्नता में वृद्धि के साथ ही जातिगत प्रतिबद्धता कम होती जाती है और सामाजिक–परिवर्तन की अभिवृत्ति दृढ़ता के साथ उजागर होती है। दलित जाति का सम्पन्न वर्ग सामाजिक परिवर्तन और क्रान्ति की बात करता है। यह वर्ग शिक्षित भी है और इनके मन में अपने समाज को प्रगतिशील बनाने की तीव्र लालसा भी है। यही कारण है यह वर्ग अन्य समुदायों से दलितों के लिये अधिक उदार दृष्टिकोण की अपेक्षा करता है। अतः स्पष्ट है कि जाति विहीन समाज की और अग्रसर होने के लिये आवश्यकता है शिक्षा और सम्पन्नता।

राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के बाद आर्थिक स्वतंत्रता की ओर उन्मुख्ता का आधार सामाजिक चेतना है, और लक्ष्य है विकास। जाति संस्तरण में निम्नतम स्थान प्राप्त दलितों में व्याप्त क्षोभ और असन्तोष को सामाजिक परिवर्तन एवं क्रान्ति की आकांक्षा की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिये।

स्वाभिमान एक अर्जित वृत्ति है। संस्कृति एवं सामाजिकता के बदलते परिवेश के कारण वैयक्तिक और सामाजिक मानदण्डों के प्रति दृष्टिकोण में सार्थक परिवर्तन के कारण दलित जातियों में स्वाभिमान का उदय हुआ है। उनका व्यवहार बदला है। शिक्षा के प्रसार ने व्यवसाय के अवसरों में वृद्धि की है। दलित व पिछड़ा वर्ग सब कुछ शीघ्रता में हांसिल कर लेना चाहता है। सुविधाभोगी वर्ग कुछ भी देना नहीं चाहता। फलस्वरूप दलितों में नवजाग्रत स्वाभिमान के कारण भारतीय समाज में प्रतियोगिता के स्थान पर आज प्रतिद्वन्दिता बढ़ी है। जाति एवं वर्ग विद्वेष को हवा मिलने का यही कारण है।

राजकीय सेवा एवं उच्च अध्ययन हेतु आरक्षण सुविधा के कारण दलितों में भी आज एक अभिजात्य वर्ग पैदा हो गया है। दलितों को मिलने वाली आरक्षण सुविधा का सम्पूर्ण लाभ आज यही दलित–अभिजात्य वर्ग उठा रहा है। इनके खिलाफ अब दलितों में ही आवाज उठने लगी है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर महासभा की ओर से यह आवाज आयी है। महासभा के मंत्री के अनुसार– ''दलितों को मिलने वाला आरक्षण व अन्य लाभ फायदे उन्हीं लोगों को मिल रहे हैं जो नाम से दलित हैं। जिस आधार पर हम लोग आरक्षण का समर्थन करते हैं और आरक्षण विरोध को गलत ठहराते हैं, वहीं अब दलित समाज में लागू हो रहीं हैं। जिन्हें आरक्षण का लाभ नहीं मिलना चाहिये, वही सारा लाभ उठा रहे हैं। सुविधाहीन दलित यह समझ रहें है कि उनके बेटे कभी भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं। क्योंकि जो लोग उच्च पदों पर बैठे हैं, आरक्षण का सारा लाभ उन्हीं के वारिशों को मिल रहा है। जिन्हें आरक्षण की सुविधा मिल गई है, जो ऊँचे स्तर पर आ गये हैं उनको

आरक्षण का लाभ नहीं मिलना चाहिये।'' निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता हैं कि :–

1. सम्पूर्ण भारतीय समाज विशेषतः दलित जातियाँ वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन चाहती है। ग्रामीण अंचल का दलित भी अब जाग उठा है। दलित वर्ग का सम्पन्न तबका जाति विहीन समाज का पक्षधर है। समकालीन सामाजिक अभिवृत्तियों के इस परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों के साथ–साथ समाज कल्याण योजना निर्माताओं को सजगता के साथ नवीन नीतियों और व्यवस्थाओं के निर्माण में पहल करनी चाहिये।
2. सरकार द्वारा प्रदत्त संवैधानिक सुविधायें, विकासपरक योजनायें एवं पर्याप्त संरक्षण दिये जाने के बाद भी दलितों के उत्थान की सम्भावनायें काफी मात्रा में अभी भी अवशिष्ट हैं।
3. अस्पर्शता की कुरीति से सम्पूर्ण दलित समाज ग्रस्त है। सवर्णों के साथ उठने–बैठने खाते पीने को अति उत्सुक दलित समुदाय स्वयं अपनी उपजातियों के मध्य इस कुरीति को क्यों कायम रखना चाहता है? शायद शैक्षिक पिछड़ापन इसका महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। फिर भी यह पृथक से अध्ययन का विषय है।
4. यह सत्य है कि भारत के समकालीन जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये है। तथापि जाति अब भी हमारे बीच है और सम्भवतः भविष्य में भी रहेगी। एक शताब्दी से भी ज्यादा समय से विविध सुधारवादी प्रयासों का शुद्ध परिणाम यह है कि जातीय नियमों को तोड़ने वालों की अब निन्दा नहीं की जा सकती।
5. आधुनिक शिक्षा, आर्थिक व्यवस्था और राजनीति के पास समग्र रूप से इतनी शक्ति नहीं है कि वे जाति को नष्ट कर सकें। जाति एक सामाजिक संस्था है जो व्यक्ति की सामाजिक सुरक्षा की भावना को परितुष्टि प्रदान करती है जिसकी आवश्यकता एक व्यक्ति को अपने जीवन के उत्तरदायित्वों को निर्वाह करने के लिये पड़ती है।

6. जाति वास्तव में एक संगठन है। अतः इसमें परिवर्तन हो सकेगा ऐसा नहीं लगता। पर इसकी परम्परागत जड़ों पर चोट जारी रखकर नैतिक और मानवीय मूल्यों पर जोर दिया जाना चाहिये।
7. जब हम जातिविहीन समाज की बात करते हैं तो उसका सीधा मतलब समानता के सामाजिक मूल्यों को आचरण मे लाने के साथ ही मानवीयता की स्वीकारोक्ति है।

अब उपाय क्या है ? संविधान तो कानून बना देगा। पर कानून से कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता। व्यक्ति की अभिवृत्तियों में सुनियोजित परिवर्तन करके समानता के मूल्य को प्राप्त किया जा सकता है। प्रगति एवं विकास का रास्ता शिक्षा के गलियारे से ही गुजरता है। अतः एक ही रास्ता है, हम शिक्षित बने, विचारों से ही नहीं आचरण में भी। शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन का एक अनुकरणीय उदाहरण गौर करने लायक है। केरल की एक अछूत जाति इझावस में जन्में नारायण गुरू ने 1902 में 'योगम्' नाम की एक पंथनिरपेक्ष संस्था स्थापित की। सम्पूर्ण केरल में संस्था की शाखायें खोली गई। 'योगम् का नारा था– 'एक जाति, एक पंथ, एक ईश्वर'। योगम् ने दो महत्वपूर्ण कार्यक्रम निश्चित किये–

1. पहला इझावस जाति का उत्थान। इसकी प्राप्ति हेतु जाति के व्यक्तियों ने सबसे पहले अपनी से नीची जाति के लोगों से स्पर्शता के सम्बन्ध स्थापित किये। शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिये सम्पूर्ण केरल में स्कूल, कॉलेज खोले गये।
2. कार्यक्रम का द्वितीय पक्ष धार्मिक और सांस्कृतिक था। मन्दिर और सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करने की कानूनी मान्यता का लाभ उठाया गया। पूजा और प्रार्थना के लिये नये मन्दिरों का निर्माण किया गया। विभिन्न धार्मिक कार्यों, शादी एवं अन्तिम संस्कार आदि से सम्बन्धित विविध कर्मकाण्डों को सरलीकृत एवं व्यावहारिक बनाया गया। समुदाय के धार्मिक और आध्यात्मिक मामलों के मार्गदर्शन हेतु सन्यासियों की एक श्रंखला का निर्माण किया गया।

लगातार पन्द्रह साल तक नारायण गुरू ने अपनी सन्यासी साथियों के साथ केरल का गहन भ्रमण किया। इझावासी व्यक्तियों की सहायता की। उनके घर और गलियों की सफाई की। उनमें अच्छी आदतों का विकास किया। उनके भोजन के तौर तरीकों में भी बदलाव लाया गया। इस प्रकार विकास और समृद्धि के पथ की सही दिशा की ओर इस उपजाति को मोड़ दिया गया। शिक्षा के साथ–साथ संस्कृतिकरण के माध्यम से नारायण गुरू ने केरल की एक अछूत जाति इझावस को सिर्फ तीस वर्षों में पिछड़ी जाति में बदल दिया।

अतः यदि इच्छा है कि हालात बदलें और परिवर्तन की बयार बहे तो सबसे पहले स्वयं से जूझना होगा। वैचारिक स्पष्टता और चारित्रिक बल से परिपूर्ण एक सामाजिक सेनानी खुद को बनना होगा। वैज्ञानिक सोच, सामाजिक संचेतना, श्रम की प्रतिष्ठा एवं अनुराग तथा कर्त्तव्य बोध की भावना व्यवहार में लानी होगी। स्वीकार करना होगा कि विकास की गति को एक सार्थक दिशा शिक्षा एवं संस्कृतिकरण ही प्रदान कर सकते हैं।

dyk0;fDr dk lLdkfjr djrhg

हर समाज के पास अपने कुछ स्थायी शाश्वत मूल्य होते हैं, जो समाज के संस्कारों का निर्माण करते हैं। यही संस्कार बाद में संस्कृति के रूप में जाने और समझे जाते हैं। संस्कृति ही समाज को सार्थक चिन्तन की शक्ति प्रदान करती है।

जीवन स्थिर और जड़ नहीं है अतः संस्कृति भी जड़ और स्थिर नहीं रह सकती। समय की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये जीवन मूल्यों के साथ ही संस्कृति भी बदलती रहती है। इसीलिये संस्कृति को स्वस्थ और मानवीय ऊष्मा से परिपूर्ण रखने के लिये जरूरी है कि समाज की विशिष्ट आत्मा के अनुकूल आधुनिक मूल्यों को आत्मसात किया जाय। परम्परा और आधुनिकता में ऐसा अनूठा समन्वय हो जो संस्कारों को नई स्फूर्ति व दिशा दे सके। जो समाज ऐसा नहीं कर पाते नष्ट हो जाते हैं। आज हमने लोकतांत्रिक संस्कृति और मूल्यों को स्वीकारा है अतः वर्तमान भारतीय संस्कृति की परिकल्पना हम उस समय तक नहीं कर सकते जब तक पारम्परिक संस्कृति के जीवन मूल्य और लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में हम नवीन जीवन मूल्यों को परिस्थापित नहीं कर पाते।

सामाजिक मूल्यों और सिद्धान्तों में इधर आयी गिरावट पर कलाकार लगातार चिन्ता जताते रहे हैं। क्या यह सब समाज में उपभोक्तावाद और भौतिकतावाद की बजह से आये बदलाव के सूचक नहीं हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में भारतीय कलाओं में भारतीयता का दुःख–दर्द, उनकी खुशियां और उनके उत्सव भी नदारद हैं। ऐसे में यदि जनमानस इन्हें अस्वीकारता है, तो क्या यह बहस का विषय होना चाहिए?

क्या आज ऐसा नहीं लगता कि शायद दूरदर्शन को हमारे परिवारिक और सामाजिक मूल्यों का अवमूल्यन करने का दायित्व सौंप दिया गया है। घर–घर में अपसांस्कृतिक मूल्य पहुँचाये जा रहे है जिनके पीछे कोई वैचारिकता नहीं हैं। यह अपसंस्कृति की ही देन है कि आज औरत सिर्फ शरीर

है। इस वजह से जीवन के मौलिक मूल्यों की अवेहलना की जा रही है।

प्रेमचन्द या कबीर की याद में अथवा भगत सिंह और उनके साथियों की शहादत के आयोजन प्रायः सांस्कृतिक या अन्य जन संगठनों की पहल पर होते हैं। ये आयोजन इस बात के प्रमाण है कि चिन्तन की एक नई धारा ऐसे नवीन मूल्यों का सृजन कर रही है जिनका सम्बन्ध–सामाजिक एवं सांस्कृतिक होता है। बेहतर जीवन मूल्यों व शोषण, उत्पीड़न से मुक्त मानव समाज की रचना के संघर्ष में कलाकार की सक्रिय व जनपक्षधर भूमिका संघर्ष को न सिर्फ बल्कि नया जीवन आवेग प्रदान करती है बल्कि उसे बहुआयामी भी बनाती है।

नाटक और रंगमंच की दुनियाँ में नुक्कड नाटक शब्द अब नया नहीं रहा। पिछले कई वर्षों से यह शब्द नाटक की पारम्परिकता से हट कर खुली जगह में नये ढंग एवं नये तेवर के साथ प्रस्तुत किया जाता है। नुक्कड़ नाटक के पीछे एक सामाजिक चिन्तन व दायित्व काम करता है। नुक्कड़ नाटक जन–पक्षधर रंगकर्म का एक सार्थक माहौल बनाने के साथ ही अपसंस्कृति के चौतरफा हमलों के मुकाबले मजबूती से खड़ा है और मानव मूल्यों को संरक्षित एवं पुर्नस्थापित करने की दशा में प्रयासरत है।

संस्कृति को अक्सर केवल गायन, नृत्य और कला तक सीमित मान लिया जाता है यह संकुचित दृष्टिकोण है। विभिन्न कलायें संस्कृति की अभिव्यक्ति मात्र हैं। जिनके पीछे एक सामाजिक चिन्तन की दीर्घकालीन परम्परा होती है। अतः कलायें ऐसी हो जिनमें भविष्य का व्यापक स्वप्न हो, यथार्थ के ताजा पक्षों को इस तरह खोजा जाये ताकि उनसे जीवन की तलाश के लिये उत्प्रेरणा प्राप्त हो सके। अतः वही कला व्यक्ति को संस्कारित कर पाती है जिसके पीछे मानवीय मूल्यों की सशक्त अवधारणा हो। कला कला के लिये, इसे नकारना होगा। कला जनता के लिये है। कला जागृति है।

ifrc)&tudfo%ukxkt|u

1857 की आजादी की पहली लड़ाई का नारा था 'जमीन जोतने वाले की'। यह नारा सामन्त विरोधी चरित्र को उजागर करता है। क्रान्ति असफल रही पर भारतीय जनता की मुक्ति की इच्छा को दबाया नहीं जा सका। सन् 1946 से 1951 तक तेलंगाना का किसान आन्दोलन जिसमें 4000 किसान मारे गये थे, इस किसान आन्दोलन के केन्द्र में भी जमीन का मुद्दा था। नागार्जुन ने बड़ी बारीकी से कविता में दर्ज किया है–

ऊबड़–खाबड़ बालू वाली धरती परती बंजर या ऊसर,
कैसी भी हो, धरती निर्भर रही जोतने वालों पर,

आजादी के बाद भी शोषक के सदियों पुराने तरीकों और सम्पत्ति के संबन्धों को जारी रखा गया। इसीलिये वास्तविक मुक्ति संघर्ष की जरूरत महसूस की गई। 'लाल भवानी' में इसकी प्रतिध्वनि तीव्र व्यंगात्मक स्वरों में है–

कागज की आजादी मिलती ले लो दो–दो आने में,
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना है कि तेलंगाने में,
पुलिस और पलटन के हाथी कितना चारा खाते हैं,
वही रंग है वही ढ़ंग है फरक नहीं कुछ पाते हैं,
सड़ी–गली नौकरशाही से पहले ही ऊबे थे हम
इधर स्वराज मिला है, तब से दूर हो गया सभी भरम
नेता परेशान हैं जनता का तूफान दबाने में
होशियार कुछ देर नहीं है नया सबेरा आने में,
लाल भवानी प्रगट हुई है सुना है कि तेलंगाने में।

जमीन के सवाल और कृषि संकट से उपजी बैचेनी का परिणाम था, नेहरू प्रेरित विनोबा का भूदान आन्दोलन जिसमें जमीदारों और

राजे–रजवाड़ों ने ऊसर–बंजर एवं अनुपयोगी जमीन भूदान में देकर संत विनोबा का गुणगान किया। इसी पर व्यंगात्मक लहजे में हरगंगे शीर्षक कविता लिखी गई–

जिनके हैं नौ लखा मकान हर गंगे,
वे हैं सर्वोदय की शान हर गंगे
सुनो विनोबा संत महान हर गंगे
भूमिहीन पावैं भुइंदान हर गंगे.....
ढाल बनें तुम संत महान हर गंगे
बांझ गाय वामन को दान हर गंगे।

ढाल तो किसी हमले से रक्षा के लिये होती है। विनोबा ढाल बन कर किसके हमले से किसकी रक्षा कर रहे हैं?

नागार्जुन की कविता का रेंज बहुत व्यापक है। रिक्शा चालक के खुरदरे पैर से लेकर बस ड्राइवर के सामने लटकती गुलाबी चूड़ियों से लेकर पके कटहल तक, यायावरी ने बाबा को वह मर्मभेदी निगाह दी जिससे वे सामान्य वस्तुओं और घटनाओं में भी मानवीय महत्ता के तत्व खोज लाते हैं।

चौथा आम चुनाव आते–आते आजादी के स्वप्न से जनता का मोह भंग हो चुका था। इस पर अनेक कवियों ने कवितायें लिखी। नागार्जुन ने इसे 'मंत्र' कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया। 'मंत्र' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ राजनैतिक कविताओं में एक मानी जाती है। इसी तरह भूदान, सम्पूर्ण क्रान्ति आन्दोलन और आपात काल पर लिखी उनकी कवितायें स्वातंत्रयोत्तर भारत के राजनैतिक इतिहास के सार्थक दस्तावेज है।

आओ रानी हम ढोएगें पालकी, तीन बन्दर बापू के, शासन की बन्दूक, बाकी बच गया अंडा, नेवला, सत्य, आये दिन बहार के, खिचड़ी, विप्लव देखा, हमने ऐसी अनेक कवितायें हैं जिनमें नागार्जुन की आलोचनात्मक दृष्टि और व्यंग की तीक्ष्णता नायाब है। नतीजे के रूप में उन्हें आपात–काल के दौरान मीसा के तहत जेल जाना पड़ा।

जेल में बन्द नागार्जुन को पता चला कि सात दलित उसी जेल में बन्द हैं। वे उन कैदियों को 'बड़े–बड़ों की राजनीति का अछूत', 'दलित–निवीड़ित मानवता का अग्रदूत' आदि पदों से सम्बोधित करते हैं, और लिखते है–

पता चला वे सात जने थे, जाने कब से यहाँ पड़े थे,
सातों के सातों नक्सल थे, अपने हक के लिये लड़े थे,
सातों के सातों चमार थे, अति दरिद्र थे, भूमिहीन थे,
करते थे मेहनत–मजदूरी, मालिक लोगों के अधीन थे
भूमि हरण बर्दास्त कर नये, चुप्पी साधी मार–पीट पर,
गुस्सा तब भड़का, बहुओं की इज्जत जब लूटी घसीट कर.....
इनकी प्रतिध्वनियों से कारा, की दीवारें हिल–हिल जावें,
आओ इन बन्दी वीरों के स्लोगन वे हम भी दुहरायें,

नागार्जुन का स्वर 'इन बन्दी वीरों' के स्वर के साथ लगातार और ऊँचा उठता गया। नागार्जुन ऐसे प्रतिवद्ध जनकवि हैं जो कहीं भी हकलाते नहीं। सब कुछ साफ–साफ बतलाते हैं–

जनता मुझसे पूंछ रही है, क्या बतलाऊ,
जनकवि हूँ, मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊ।

प्रतिवद्धता किसके प्रति होनी चाहिये। नागार्जुन सीधे तौर पर अपनी प्रतिवद्धता देश के बहुसंख्यक गरीबों के साथ व्यक्त करते हुये कभी विचलित नहीं हुये।

प्रतिबद्ध हूँ, सम्बद्ध हूँ, आबद्ध हूँ, प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ,
प्रतिबद्ध हूँ–, बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त–,
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ–,
अंध–बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिये.....
अपने आप को भी 'व्यामोह' से बारम्बार उबारने की खातिर.....,

शोषितों–वंचितों के प्रति यही प्रतिवद्धता कवि को उसी वर्ग से सम्बद्ध भी करती है और आवद्ध भी, और स्वयं के व्यामोह से मुक्त भी।

संदर्भ

1. नागार्जुन : प्रतिबद्ध हूँ, नागार्जुन रचनावली–2
2. नागार्जुन : हर गंगे
3. नागार्जुन : लाल भवानी
4. नागार्जुन : प्रतिहिंसा का महायुद्ध, नागार्जुन रचनावली–2 सं0 शोभाकान्त, राजकमल, दिल्ली, 2003
5. मैनेजर पाण्डेय : आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005
6. रामायन राय : नागार्जुन, जनमत, 35
7. अवधेश त्रिपाठी : किसान आन्दोलन और नागार्जुन, समकालीन, लोकयुद्ध, 10–16 जुलाई, 2010

n";Ur%,dutje

(एक सितम्बर जिनका जन्म दिन है)

बहुत से लोग दुष्यन्त को नहीं जानते किन्तु उनके शेर कहते हैं और गजल गाते हैं। जो गजल पहले, आशिक और माशूक के बीच ही सिमटी रहती थी दुष्यन्त उसकी बेडियों तोड़कर नई जमीन पर ले आये। हिन्दी–उर्दू के फसाद से परे आम बोलचाल की भाषा में गजल को अपने इज़हार का माध्यम बनाया। राजनीति, सत्ता और समाज की विषमताओं के खिलाफ गज़ल को एक सशक्त हथियार के रूप में प्रयोग किया। अपनी बात को दूर तक ले जाने के लिये कमलेश्वर से दोस्ती और धर्मयुग के पन्नों का सहारा लिया। दुष्यन्त को ताज भोपाली जैसे शायर का साथ ही नहीं इमरजेन्सी के खिलाफ जन आक्रोश का खुला समर्थन भी हासिल था। व्यक्ति की पहचान उसके जन्म दिन से नहीं होती। उसके नाम से भी नहीं होती। व्यक्ति की पहचान होती है उसके द्वारा किये गये कार्यो से। दुष्यन्त एक ऐसी ही शख्सियत है। दुष्यन्त कुमार की पहचान उनकी गजलें है जिनमें आम आदमी की पीड़ा है। समाज को भ्रष्ट एवं कलुषित कलेवर देने वाली व्यवस्था के खिलाफ दुष्यन्त ने अपनी आवाज बुलन्द की है।

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो।
ये कंवल के फूल कुम्हलाने लगे है।।

बदहाली, पीड़ा और शोषण के साये में जर्जरित आम आदमी को गजलों में बाँधा है दुष्यन्त ने। कालाहांडी जैसे इलाकों में भूख से मरते आदमी की मौत की असलियत को नकारते हुये कुपोषण को मौत का कारण बताना शासन की बेशर्म बेरहमी नही तो और क्या है। तभी तो व्यथा से कराह कर दुष्यन्त ने कहा है–

ये सारा जिस्म झुक कर बोझ से दुहरा हुआ होगा।
मैं सजदे में नहीं था, आपको धोखा हुआ होगा।।

यहाँ तक आते–आते सूख जाती है कई नदियाँ।
मुझे मालूम है पानी कहा ठहरा हुआ होगा।।

जब समाज का अगुआ वर्ग जी हुजूरी में समय काट कर सच बोलने की सामर्थ्य खो चुका होता है। सच उजागर करने वाले कर्तव्यनिष्ठ अधिकारियों को जब दंडित किया जाने लगता है और कही से भर्त्सना की आवाज भी नही उठती। ऐसे ही पतनोन्मुखी समाज के हालात को चिन्हित किया है दुष्यन्त ने–

यहाँ तो सिर्फ गूंगे और बहरे लोग बसते हैं।
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।।

भारतीय लोकतंत्र का एक काला अध्याय 1975 में लिखा गया था। शीर्षक था ''आपात काल''। उसी समय के लगभग दुष्यन्त ने एक गजल लिखी थी–

मत कहो आकाश में कुहरा घना है,
यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है।

सेंसर था। अखबार नहीं छपे थे। सम्पादकीय पर सिर्फ प्रश्न चिन्ह (?) छपा था। क्योंकि –

दोस्तो! अब मंच पर सुविधा नहीं है,
आजकल नेपथ्य में सम्भावना है।

क्योंकि उस समय के शासक के सूत्रधार के पास कुछ जानदार कठपुतलियां थी जैसे चाहे नाचने को तैयार–

एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है,
आज शायर, ये तमाशा देखकर हैरान है।

ऐसे अंधकार पूर्ण माहौल में, काल कोठरी में भी कुछ रौशनदान होते है, जो हौसला अफजाई करते है, उम्मीद जगाते हैं।

एक बूढ़ा आदमी है, मुल्क में या यों कहो,
इस अंधेरी कोठरी में एक रोशन दान है।

तब जय प्रकाश नारायण थे। अफसोस! उस नारायणी फौज को

आज क्या हो गया है वह पथ भ्रष्ट कैसे हो गयी। क्या सत्ता का चरित्र ही ऐसा होता है? फिर भी आज अन्ना हजारे है, रामदेव हैं। उम्मीद है, कल फिर सुवह होगी। किन्तु हमें याद रखना होगा हालात एक जैसे है। बहुत कुछ काला–स्याह लिखा जा चुका है, लिखा जा रहा है। फिर से आपात काल तो नहीं लिखा जा सकता। किन्तु हालात और भी गम्भीर हैं, ज्यादा बद्तर हैं–

एक चिनगारी कहीं से ढूढ़ लाओं दोस्तो,
इस दिये में तेल से भीगी हुई बाती तो है।

बहस छिड़ी है। गरीब कौन है, अमीर कौन हैं ? शहर में रु0 30/– और ग्रामीण इलाकों में रु.0 25/– दैनिक पाने वाला आदमी गरीब नहीं है। योजना आयोग का फतवा है कि वह अमीर है। इस अमीर आदमी के लिये शिक्षा नहीं, चिकित्सा नहीं। जानवर से भी बदतर हालत है इस अमीर आदमी की, तो गरीब की हालत कैसी होगी ? नाटक ''नहीं कबूल'' के एक गीत पर गौर करें–

मैं राशन की बोरी हूँ,
खेतों से आयी छोरी हूँ।
हाय उमरिया बीती जाये,
मिला न मुझे अपना हबीब
मिला न हमें एक भी गरीब
भूखे मेरे चाहने वाले
हाय–हाय फूटे मेरे नसीब

देश में कोई गरीब है ही नहीं। फिर भी भूख से लोग क्यों मर रहे है? कुपोषण क्यों है ? इसका कोई जबाव देने वाला नहीं है। अदम गोंडवी इसे इस प्रकार कहते है –

एक तसवीर भारत मां की मैंने यूं बनाई है,
बंधी है एक बेबस गाय, खूंटे में कसाई के।

अदम् आगे कहते है –

सौ में सत्तर अदमी, फिलहाल जब नाशाद है।
दिल पर रखकर हाथ कहिये, देश क्या आजाद है।

इस तस्वीर को दुष्यन्त कुछ इस तरह पेश करते है –

कल नुमाइश में मिला था चीथड़े पहले हुये
मैंने पूंछा नाम तो बोला हिन्दुस्तान है।

हमसे बादा किया गया था– आजाद भारत में आजादी के जश्न का, शोषण मुक्त समाज का, सब को सुलभ न्याय का। पर अंधेरा है, भ्रष्टाचार का बोल–बाला है –

कहॉ तो तय था चिरांगा हरेक घर के लिये,
कहॉ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिये।

हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में किसी भी पार्टी में लोक तंत्र नहीं हैं। यहॉ तो सिर्फ एक सुपर नेता का हुकुम चलता है। सूचना का अधिकार किसी भी राजनैतिक पार्टी को स्वीकार नहीं है इस बावत क्या सरकार कानून लायेगी? कितना अच्छा चित्रण है–

मौलवी से डॉट खाकर अहले मकतब
फिर उसी आयत को दुहराने लगे हैं।

आज की लोकशाही में हम अपना जनप्रतिनिधि नहीं चुनते, बल्कि पॉच साल के लिये अपना शासक चुनते हैं। शासक हमेशा से शोषक रहा है, शोषक होता है। जनता से दूर–बहुत दूर। आम जनता के सरोकार से कोई मतलब नहीं। हॉ! याद आते हैं, चुनाव के बक्त, बोट जो प्राप्त करना है। इस जनता को बहलाने, फुसलाने के लिये बोट रूपी एक झुनझुना पकड़ा दिया गया है। पर इसे बजना शासकों की मर्जी से ही है और मर्जी है धर्म, जाति, क्षेत्र।

जिस तरह चाहो–बजाओं इस सभा में,
हम नहीं है आदमी, हम झुनझुने हैं।

इनके लिये हर नागरिक बोटर हैं, बोटर माने झुनझुना। भारत अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त तो हुआ, किन्तु आजादी का सपना साकार नहीं

हो सका। गोरों के स्थान पर काले और भूरों का शासन आया। पर विकास की किरण समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े आम आदमी तक नहीं पहुँची। अफसोस इन पैसठ वर्षों में राष्ट्रपिता गाँधी को ही अप्रांसिंगक करार दिया जा चुका है। उनकी ''हिन्द स्वराज'' रामायण बांचने जैसी हो गई है। क्योंकि कुर्सी पर अधिकार जमा लिया है, उस जमात ने जिसके लिये भारत एक बाजार है और आम व्यक्ति सिर्फ ग्राहक। इसलिये आज राजनीति सेवा नहीं एक व्यवसाय हैं, जिसके साये में पलते है सफेदपोस अपराधी और उनके हमसायेदार गिरोहबन्द।

इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछी हैं,
हर किसी का पॉव घुटनों तक सना है।

व्यवस्था परिवर्तन जरूरी है। इसलिये आज सामाजिक आन्दोलन प्रासंगिक हैं। भ्रष्टाचार और काले धन से निजात पाने के लिये राजनीतिक–प्रशासनिक गठजोड़ तोड़ने के लिये। ये सभी हालात परिवर्तन की ओर इशारा करते हैं। आम आदमी को परेशान करते हैं। कोहरा घना है। रास्ता नहीं सूझ रहा, हर ओर हा–हा कार है, कोहराम मचा है, उम्मीद की किरण शायद अभी भी है–

हो गई है पीर पर्वत सी, पिघलनी चाहिये,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिये।

दुष्यन्त ने अपनी प्रगतिशील गजलों के माध्यम से क्रान्ति का आवाहान करते हुये कहा कि सम्पूर्ण परिवर्तन के लिये भगीरथ जैसी बैचेनी चाहिये, कुर्बानी करनी होगी–

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में ही सही,
हो कहीं भी आग, आग जलनी चाहिये।

ऐसी आग सब कुछ जले, सब स्वाहा हो, तभी नया उजाला आयेगा।

हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गांव में,
हाथ लहराते हुये, हर लाश चलनी चाहिये।

क्या ? कभी ऐसा होगा, हमें उम्मीद है, ऐसा होगा, हम कोशिश करेंगे–

कैसे आकाश में सूराख हो नहीं सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।

महान लोकतांत्रिक प्रणाली में भी जब आवाम की आवाज बन्द कर दी जाती। कलम को कलम कर ठूंठ बना दिया जाता है। जी हुजूरों का हुजूम जब इस विशाल धरती को किसी का पर्याय बनाकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अपहरण का दुस्साहसी प्रयास करता है तब सच्चाई की आवाज को बुलन्द करने वाले शायर पैदा होते हैं। ऐसे शायरों और व्यक्तियों के समूहों में से फिर एक दुष्यन्त पैदा होता है, जो आम आदमी के दर्द को आवाज देकर एक साहित्यिक नजीर बन जाता है।

संदर्भ

1. सिंह, कृष्ण प्रताप : अदम गोंडवी से बात चीत, सामर्थ्य, कानपुर मार्च–अप्रैल 2012, पृ0 5–8
2. गोंडवी, अदम : समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2010
3. कुमार, दुष्यन्त : साये में धूप, राधा कृष्ण, प्रकाशन, दिल्ली, 2003
4. राना, मुन्नवर : लोग ढूंढेगे हमें भी....., सामर्थ्य, कानपुर, मार्च–अप्रैल 2012, पृ0 7–9
5. शर्मा, ब्रजेश : नहीं कबूल, ज न म, नुक्कड, सित0–अक्टू0 2000, पृ0 35–40

dgkuh , d vFkkrk?kEe dM dh

आजमगढ़ जिले के ग्राम्य आंचल में अवस्थित प्राइमरी स्कूल के एक बालक केदार नाथ पांडे को एक शेर बहुत पसन्द था। कालान्तर में यही शेर उसके जीवन का मानो आदर्श बन गया।

सैर कर दुनियां की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ।
जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ।।

वह घूमता रहा। एक स्थान से दूसरे स्थान तक। गाँव से शहर और महानगर की ओर। राष्ट्र से अनारिष्ट्र तक। देश से विदेश तक। वैष्णव धर्म से आर्य समाज, बौद्धधर्म और फिर साम्यवाद की दिशा में एक निरन्तर गतिमान न रुकने वाली यात्रा।

'सुबह होती है, शाम होती है।
उम्र यों ही तमाम होती है।।"

यह बात कही नहीं, दोहराई नहीं। क्योंकि उम्र यों ही खत्म नहीं हो रही थी क्योंकि हफ्ते के सातों दिन काम करते जाना ही उसे भाता था।

मन के किसी कोने में मृत्यु का भय नहीं था। क्या जीवन की परवाह करनी चाहिये ? मृत्यु और अभाव के लिये चिन्ता करने की जरूरत क्या है ?

इस बालक की बचपन की याद में 1897 का भयानक अकाल था, जिसमें भारत के लाखों लोग भूख से तड़प कर मर गये। गरीबी और भूख की वेदना का अनुभव वह कभी भूला नहीं। जरूरतमन्दों के प्रति करुणा और उनकी सहायता को सदैव तत्पर रहा।

सत्य की तलाश ने या कहें कि दुनिया की तलाश ने केदार पाण्डे को बाबा दामोदर दास और फिर आर्य समाजी बना दिया। एक दिन उन्हें एक जीवन मंत्र मिला– 'चरति भिक्षके' (भिक्षु ! तुम चलते रहो)। पर पीत

वस्त्र ज्यादा दिन नहीं भायें। सूट–पेन्ट अच्छे लगे विदेश में, रूस में। भारत लौटे तो कुर्ता–पाजामा, अंगरखा या लम्बा कोट जाड़े में।

उन्होंने बुद्ध के कथन को जिन्दगी में उतारा था– 'अन्तानो अप्प दीपो भव' (अपने दीपक आप स्वयं बनो) आत्म निर्भर बन कर चलो। न तो कोई एक पुस्तक या कोई एक महापुरुष सबके लिए अनाम सत्ता है। न वह सबको मार्ग दिखा सकता है।

यह अद्‌भुत कहानी एक ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व की है जिसने किसी कालेज या विश्वविद्यालय में शिक्षा नहीं पायी। इस यायावर विद्वान को रूस के एक विश्वविद्यालय ने बौद्ध दर्शन के प्रोफेसर पद हेतु सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया। यह व्यक्ति था राहुल सांकृत्यायन। महापंडित राहुल सांकृत्यायन सारी दुनियां में आज अकेला एक ऐसा आदमी था जिसने तिब्बत जाकर, तिब्बती भाषा सीखकर ऐसे बौद्ध ग्रन्थ को हिन्दुस्तान में वापस लाने का साहस किया, जो इस देश में खो चुके थे। धर्मकीर्ति का 'प्रमाण वार्तिक' एक ऐसा ही बौद्ध न्याय का ग्रन्थ है जिसके कारण उनकी कीर्ति दूर–दूर तक होती हुई लेनिनग्राद तक पहुंची और रूसी विद्वान इचेनीहिकी ने उन्हें सादर आमंत्रित किया।

तिब्बती बौद्ध धर्म के मूल में जाने की तलाश पक्की तरह से मन में संकल्प बनकर शुरू हुई। राहुल जी के तिब्बत जाने की खबर किसी को नहीं हुई। न भारत सरकार न नेपाल सरकार न तिब्बत सरकार। तब तिब्बत भारतीयों के लिये वर्जित प्रदेश था। नेपाल और तिब्बत सीमा पर पहुंचकर उन्होंने आनंद कौत्सायन को पत्र भेजा और लिखा ''शरीर का मूल्य समय आ जाये तो कुछ भी नहीं, अब जिस कार्य के लिये निकला हूँ– देहमं व पावएत, कार्यसः साधवेत'' इसका अर्थ है, या तो जान ही दे दूंगा या अपने कार्य को पूरा करके लौटूंगा।

लंदन स्थित कार्लमार्क्स की समाधि पर राहुल जी ने फूल चढ़ाया और लिखा ''बिल्कुल साधारण कब्र थी, जिस पर घास उगी हुई थी। दुनिया के श्रमजीवियों का उद्धार करने वाला, अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक श्रम

करने वाला, कार्लमार्क्स इसी कब्र में शान्ति पूर्वक सो रहा था। बाहर कोई स्त्री फूल बेच रही थी।'' राहुल कहते थे ''किसी भी धर्म या मत को मैंने नाव की तरह माना है इसे अपने सिर पर उठाने वाला बोझा नही'' इसी कारण सनातन हिन्दू धर्म में जन्मे, पले ब्राह्मण कुल के राहुल ने आर्य समाजी, बौद्ध, साम्यवादी और अन्त में वैज्ञानिक मानवतावादी विचार धारा को अपनाया।

संसार परिवर्तनशील है, कुछ भी अन्तिम नहीं, मनुष्य निरंतर गतिमान है, कोई भी संस्था जो मानव निर्मित है संपूर्ण या आदर्श नही हो सकती क्योंकि मानव स्वयं में अपूर्ण है। इसी भावना के तहत निरंतर अपने आपको सुधारते जाने की क्षमता थी उनमें। पहली विचार धारा से चिपककर नहीं रहते थे। उनकी मानवता में आस्था थी। मानवतावादी राहुल की सहानुभूति सदैव शोषित के साथ थी। बुद्ध या मार्क्स के प्रति प्रेम, अंततः मानव कल्याण के उद्देश्य से था। उनके सारे साहित्य में यह स्वर प्रधान है। व्यक्ति केन्द्रित मोक्ष या मुक्ति नहीं चाही उन्होनें।

cgrj nfu;k dh ryk'k

किसान बचाओ–देश बचाओ के अन्तर्गत सांस्कृतिक यात्राएं भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के आहवान पर वर्ष 2003 में राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों, कश्मीर से कन्याकुमारी तक, कलकत्ता से दिल्ली तक निकाली गई।

कन्याकुमारी से दिल्ली तक सांस्कृतिक यात्रा, बुन्देलखण्ड की वीरभूमि एवं सांस्कृतिक परम्पराओं से परिपूर्ण बुन्देलखण्ड की उपजाऊ जमीन से होकर गुजरी भारतीय जननाट्य संघ, इप्टा, उरई के रंगकर्मियों ने पिरौना में सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं नाट्य–मंचन, जनगीतों एवं लोकगीतों के माध्यम से बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक पहचान बनाकर यात्रा का स्वागत किया।

डी0 राजा के साथ यात्रा में बहुत से लोग थे। उरई इप्टा के रंगकर्मियों ने जब अपनी नाट्य–प्रस्तुत 'नई सदी की नई गुलामी नहीं कबूल' प्रस्तुत की, तब डी0 राजा ने अपने वक्तव्य में कहा, जो बात हम कहने के लिये कन्याकुमारी से चले वो आप सभी ने अपनी नाट्य–प्रस्तुति में कलात्मक तरीके से कह दी। आप सभी रंगकर्मी मुम्बई में आयोजित 'वर्ड सोशल फोरम' में अपनी नाट्य–प्रस्तुति के द्वारा सहयोग दें। लेखक के नेतृत्व में दस सदस्यीय नाट्य दल 'वर्ड सोशल फोरम' में सम्मिलित हुआ और 20 जनवरी को गोरेगाँव परिसर में स्थित कबीर मंच मुम्बई में 'नई सदी की नई गुलामी नहीं कबूल' का बेहतरीन प्रदर्शन किया।

विश्व सामाजिक मंच का चौथा सम्मेलन 16 से 21 जनवरी मुंबई में आयोजित किया गया। तमाम प्रश्नों को छोड़ने के बाद भी यह सम्मेलन विश्व पटल पर अपनी अमिट छाप छोड गया। ब्राजील से मुंबई तक की यात्रा में विश्व सामाजिक मंच ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके पूंजीपति आकाओं को भी सोचने के लिए विवश कर दिया।

''एक दूसरी दुनियाँ संभव है'' के विकल्प के साथ यह सम्मेलन

शुरू हुआ। जिसमें 128 देशों के लगभग सवा लाख लोगों ने सभाओं, गोष्ठियों, प्रदर्शनों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लिया। इसी के समानान्तर और अन्तर्गत मुंबई प्रतिरोध 2004 भी चलता रहा, जिसने 'विश्व सामाजिक मंच' के आयोजन के तौर–तरीकों पर बुनियादी सवाल उठाये, क्योंकि यह वाजिब है कि हम जिससे धन ले रहे हों उसका विरोध करें यह सम्भव नहीं है। आज एक नयी और बेहतर दुनियाँ के लिये कुछ सार्थक प्रयास करने की जरूरत इसलिये है क्योंकि विश्व के सत्तर प्रतिशत संसाधनों पर धनी देशों के उंगली पर गिने जा सकने वाले कुछ समृद्ध परिवारों का ही कब्जा है इन लोगों ने ह्यूमन इंजीनियरिंग के नाम पर नया शब्द मानव संसाधन गढ लिया हैं। इस शब्द का सीधा अर्थ है–समृद्ध को और अधिक समृद्ध बनाने के लिये मनुष्य को एक संसाधन बना लिया जाय, मतलब आम आदमी की बेहतरी का प्रयास नहीं बल्कि उसके शोषण का विकास। संसाधन तो दूसरे की बेहतरी के लिये होते हैं। तो जिस दुनिया का लक्ष्य आम इंसान और इंसानियत का शोषण हो और एक आम आदमी जिसकी नियत में सिर्फ भूख ही लिख दी जाये और वह भूख भी तब, जब संसार में अनाज की कमी न हो। इसके विपरीत हमें चाहिये एक ऐसी बेहतर दुनियाँ जिसमें समस्त संसाधन सभी मनुष्यों के लिये प्रयुक्त हों। आम आदमी की बेहतरी लक्ष्य होगा। विश्व के सभी संसाधनों का विकास इस तरह हो कि सभी सुविधाएं आम आदमी की पहुँच में हो। इसी संकल्प के लिये है विश्व सामाजिक मंच का गठन। विश्व के विकासशील, अल्पविकसित देशों के विचारों का अनूठा संगम।

विश्व सामाजिक मंच में 108 देश अपने–अपने देश की सांस्कृतिक झाँकियाँ प्रदर्शित कर रहे थे। गीत, संगीत, नाटक, झाँकियाँ, नारे, जुलूस, विभिन्न मुखौटे व स्वांग आदि के साथ एक अद्भुत सांस्कृतिक समागम और साथ ही इन माध्यमों से बहस, चर्चायें कि क्या होना चाहिये और कैसे ? तमाम सांस्कृतिक विभिन्नताओं को समेटे से सभी परिदृश्य विश्व सामाजिक मंच के उद्घोष वाक्य ''एक दूसरी दुनियाँ सम्भव है'' की ओर इशारा कर रहे थे।

पर अन्तर्मन ने कहा–कौन सी दुसरी दुनियाँ ? बदहाल, बदसूरत और भी काली–अंधेरी दुनिया। अरे नहीं! उत्तर मिला– अच्छी, खूबसूरत, रहने लायक, उत्साह मौज–मस्ती से भरपूर, शोषण–बदहाली से मुक्त, समानता, एकता, बन्धुत्व वाली दुनिया। एक ऐसी दुनिया क्या सम्भव है ? उत्साहित मन ने कहा, क्यों नहीं। तभी कैफी ने आवाज दी– ''मैं भी उठूं, तुम भी उठो, तुम भी उठो, हम सब उठें, अपने हिस्से की खिड़की खोलें और आओ हम प्रयास करें, एक बेहतर दुनिया के लिये, शोषण मुक्त दुनिया के लिये।

vkvk i;kl dj

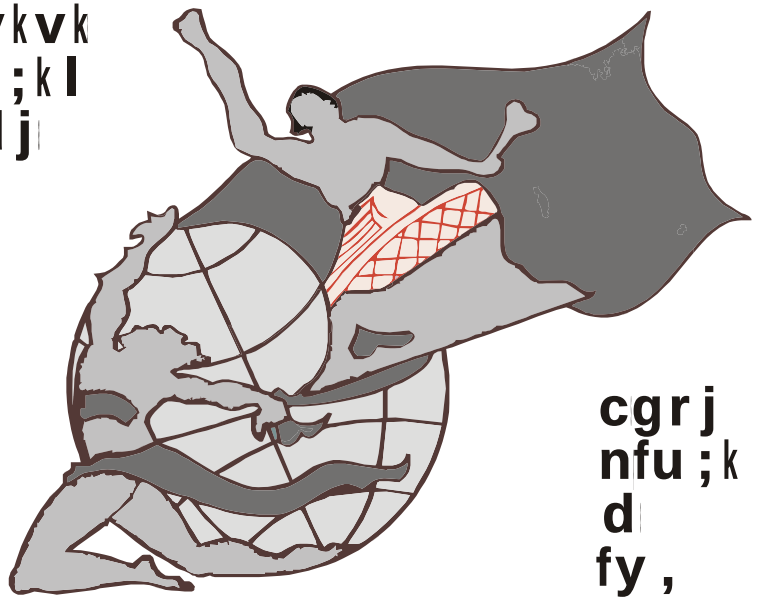

cgrj nfu;k d fy,

'kk"k.k eDr nfu;k d fy,

lQnj gk'keh

(12 अप्रैल 1954, 2 जनवरी 1989)

पहली जनवरी 1989 को दिल्ली से सिर्फ 15 किलोमीटर दूर साहिबाबाद कस्बे में एक नाटक खेलते हुये एक विख्यात रंगकर्मी सफ़दर हाशमीं की हत्या कर दी गई थी। सफ़दर का आखिर गुनाह क्या था? सफ़दर एक होनहार कलाकार था। परिश्रमी, ईमानदार, संवेदनशील और सृजनात्मकता के स्तर पर विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न एक युवक था। सफ़दर को सिर्फ इसलिये मार दिया गया था क्योंकि उसकी आस्था इंसानियत में थी। मानवता में उसका अदम्य विश्वास था। उसकी किसी से दुश्मनी नहीं थी फिर भी उसे मारने की साज़िश रची गई थी। साज़िश करने बाले जानते थे कि ''हल्ला बोल'' से ज्यादा खतरनाक वह दिमाग है जिसमें हल्ला बोल के विचार पैदा होते है इसलिये हल्ला बोल के सूत्र धार को ही समाप्त कर दिया गया। पर ऐसे बददिमाग लोग भूल जाते है कि सूत्रधार की हत्या कर देने मात्र से नाटक समाप्त नहीं किया जा सकता। ''हल्ला बोल'' जैसे नाटकों के लिये सूत्रधार की आवश्यकता होती भी नहीं है। मानव नियति का नाटक तो बगैर सूत्रधार के भी जारी रहता आया है और रहेगा।

दिन दहाड़े निहत्थे रंग कर्मियों की एक मामूली से चुनावी मौके पर हत्या की जा सकती है? क्या यह विश्वसनीय लगता है? सफ़दर की हत्या के सन्दर्भ में देश भर के बुद्धिजीवियों के मध्य एक सार्थक वहस की आज आवश्यकता इसलिये और भी ज्यादा है क्योंकि मानवनियति का नाटक बगैर सूत्रधार के भी जारी रहता आता है और रहेगा।

सफ़दर की नृशंस हत्या की भर्त्सना भारत में ही नहीं अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर की गई। लेकिन खेद है कि तत्कालीन सत्ता पक्ष के किसी भी सदस्य ने इस जघन्य हत्याकांड की सार्वजनिक भर्त्सना तक नहीं की। क्योंकि सत्तापक्ष की राजनीति ने अपनी स्वार्थलिप्सा के लिये ''हत्या'' जैसे

पतनशील और वीभत्स माध्यम को चुना था। हत्या एक ऐसा औजार है जिसकी टकराहट जन संस्कृति से है। जनता से जनता की संस्कृति से उसका कुछ लेना–देना नहीं है। पर सफ़दर तो इन्हीं सब का हिमायती था। प्रतिरोध की संस्कृति के पक्ष में सफ़दर की सृजनात्मकता और उसके आचरण के बीच कोई अन्तर नहीं था। आज जब कारपोरेट, बाजारवाद समर्थक मीडिया, उपभोक्तावाद, धर्मान्धता, साम्प्रदायिक फासीवाद का गठजोड़ इतिहास और संस्कृति को अतीत की अंधी गली में मोड़ने में लगा है, सफ़दर की जलाई मशाल की जरूरत पहले से कहीं ज्यादा बढ़ गयी है। इतिहास के पन्नों में यह बात स्पष्ट रूप से दर्ज है कि फांसीवाद, पूंजीवाद का ही विकृत रूप है। धर्मान्धता, अंधराष्ट्रवाद, रूढ़िवाद, पुनरुत्थानवाद और उपभोक्तावाद उसके चिरपरिचत शस्त्र है जिनसे वह प्रगतिशील, जनवादी ताकतों और फिर उदारवादी ताकतों को अपना निशाना बनाता है, इतना ही नहीं वह इतिहास के सार्थक प्रतीकों को भी विकृत करता है या उन्हें अपने पक्ष में समायोजित करता है ऐसा करते हुये वह अक्सर अपनी उदार छवि भी पेश करता है। कारपोरेट जगत एक ओर ऐसा सांस्कृतिक वातावरण बनाता है जिसमें असहमति और सवाल करने की जगह ही न हो। फिर भी प्रयास रहता है कि संस्कृति के सहज स्वाभाव के कारण जनपक्षधरता और सार्थकता के कुछ तत्व बचे भी रह जाये तो कभी कभार उन्हें भी कुछ 'स्पेस' दे कर उसकी धार कुंद कर दी जाये।

भारत में जन नाट्य आन्दोलन का प्रारम्भ स्वतंत्रता के पूर्व हो चुका था। इप्टा ने इसकी शुरूआत की थी। नुक्कड़ नाटक का रास्ता इप्टा ने ही चुना था। किन्तु आठवें दशक के प्रारम्भ में ही संगठित रूप से एक नये प्रकार से इसकी पुनः शुरूआत हुई। सफ़दर के नेतृत्व में 'ज न म' ने इस दिशा में पहल की। नुक्कड़ नाटक के माध्यम से उसने जनता को जनता से जोड़ा। एक नया और बड़ा दर्शक वर्ग तैयार हुआ। सफ़दर ने जिस नुक्कड़ नाटक का विकास किया वह आज सांस्कृतिक आन्दोलन का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं अविभाज्य अंग बन चुका है। दमन, शोषण, कुरीतियाँ,

अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता, नारी उत्पीड़न, निरक्षरता जैसी तमाम ज्वलंत समस्याओं का चयन किया गया। जनता के बीच, उन्हीं की भाषा में उन्हीं के अनुभवों के माध्यम से आम लोगों को जागरूक एवं आलोचनलाशील बनाने के बुनियादी काम में नुक्कड़ नाटक की विधा एक महत्वपूर्ण सार्थकता के रूप में उभर कर आयीं हैं। इसका श्रेय निःसन्देह सफ़दर हाशमी को है।

राजनीति से जिन्हें कोई सरोकार नहीं ऐसे संघर्षशील आम आदमी के हाथ में नुक्कड़ नाटक सुगम और कारगर औजार की तरह है। आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये संघर्ष की आवश्यकता होती है। जिसमें निर्भयता की अहं भूमिका है। निर्भय ही अपना अधिकार मांग सकता है। उसके लिये लड़ सकता है और स्वयं के विरुद्ध संघर्ष कर सकता है। अतः जरूरी है कि निम्न पंक्तियों के साथ हम सफ़दर को याद रखें।

"दिल में जो डर का किला है, तोड़ दो अन्दर से तुम,
एक ही धक्के में, अपने आप यह ढह जाएगा।
आओ मिल कर हम बढ़े, अधिकार अपने छीन लें,
काफिला अब चल पड़ा है, अब न रोका जायेगा।"

egkt uh lH; rk

सामान्तशाही और जागीरदारी व्यवस्था में राजा का हुक्म कानून होता था। अपनी आन–बान–शान कायम रखने के लिये या फिर राज्य विस्तार की महात्वाकांक्षा से प्रेरित होकर दूसरे देशों पर आक्रमण करना होता था। किन्तु राज्यशाही प्रजा का शोषण करने के बजाय उनके दुःख सुख में शरीक होती थी और उनके गुणों की कद्र करती थी। सामन्तशाही व्यवस्था समाप्त प्रायः है और उसका स्थान पूंजीवादी व्यवस्था ने ले लिया है। इस महाजनी व्यवस्था में सारे कार्यों की गरज सिर्फ पैसा होती है। दूसरे देशों पर राज्य किया जाता है तो मूल में विजित राज्य का शोषण होता है। इस महाजनी सभ्यता का ताजा उदाहरण इराक पर अमेरिका का आक्रमण है विश्व शक्तियाँ आर्थिक साम्राज्यवाद की स्थापना हेतु प्रयासरत है।

वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व दो भागो में बंट गया है। बड़ा हिस्सा, मरने और खपने वालों का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का है जो अपनी शक्ति, प्रभाव से बड़े समुदाय को बस में किये है। उन्हें इस बड़े समुदाय के साथ किसी तरह की कोई हमदर्दी नहीं है। इस बड़े समुदाय का अस्तित्व केवल इसलिये है कि वह चुपचाप शोषण सहता रहे और चुपचाप इस दुनियाँ से विदा हो जाये।

धन–लोभ ने सम्पूर्ण मानवीय भावनाओं को अपने आधीन कर लिया है कुलीनता और शराफत की कसौटी केवल पैसा है जिसके पास पैसा है वही देवता है। यह हवा इतनी जहरीली हो गई है कि इसमें जीवित रहना कठिन होता जा रहा है।

भारतीय संविधान में उल्लिखित है कि भारत एक सोशल वेलफेयर स्टेट है किन्तु बहुत अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि सोशल वेलफेयर स्टेट के स्थान पर बहुत अधिक गहराई के साथ अब लिख दिया गया है ''मार्केटिंग बेलफेयर स्टेट''। इस ''मार्केटिंग वेलफेयर स्टेट'' में अब

हम प्रजा नहीं रह गये है। सिर्फ उपभोक्ता हैं और अपना देश एक बाजार है। इस बाजारी व्यवस्था में हर एक चीज बिकाऊ है। समाज के निचले तबके को भारी भरकम फीस के कारण उच्चस्तरीय शिक्षा से वंचित किया जा रहा है। धनपतियों के बच्चे डाक्टर, इंजीनियर की पढ़ाई खरीद सकते हैं।

उत्तर प्रदेश का अगर उदाहरण ले तो पिछले वर्ष निजी इंजीनियरिंग कॉलेजों में 50 प्रतिशत से अधिक सीट्स खाली रह गयी थी और इस वर्ष भी यही हालत है। चिकित्सा सेवा में चिकित्सीय सेवायें, और दवाईयां इतनी मंहगी हो चुकी है कि एक आम आदमी के पास ईश्वर से मृत्यु मांगने के अलावा बचा ही क्या है क्योंकि वह अपना इलाज नहीं करवा सकता।

निजीकरण के इस दौर में कम से कम शिक्षा, चिकित्सा और सुरक्षा तो सरकार का दायित्व होना ही चाहिए था न, कम से कम इनको तो निजीकरण के हाथों न सौंपा जाये। सरकार का दायित्व है कि सब जन शिक्षित हो वर्तमान भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ0 ए.पी.जी. अब्दुल कलाम बच्चों के बीच में जाकर उन्हें एक चार लाइनों का नॉलिज कार्ड वितरित करते हैं–

''सोचने से विचार आता है।
विचार से सृजन आता है।
सृजन से ज्ञान आता है।
ज्ञान से व्यक्ति महान बनता है।''

क्या एक अनकहीं अलिखित व्यवस्था के तहत आम जनों को उच्चशिक्षा से वंचित करके क्या समाज को चेतना विहीन नहीं बनाया जा रहा ? स्ववित्तपोषित शिक्षण संस्थानों के माध्यम से क्या ऐसा नहीं हो रहा है।

एक प्रश्न के उत्तर में अम्बेडकर ने कहा था ''भारत का संविधान दुनिया के उत्कृष्ठतम संविधानों में से एक है यदि यह कभी असफल होता है तो निश्चित तौर पर कहना होगा कि वे लोग निकृष्ठ और अधम थे क्या आज ऐसा नहीं है।

कान्ट्रेक्टर फार्मिंग तथा हाइब्रिड बीज के साथ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों

ने कृषि क्षेत्र में विधिवत् प्रवेश कर लिया है। हाइब्रिड बीजों का इस्तेमाल केवल बीज के रूप में एक ही बार हो सकता है। कान्टेक्ट फार्मिंग किसानों के लिए स्लो प्वाइजन है। प्रारम्भिक दौर में किसानों को कई गुना फायदा होगा किन्तु कालान्तर में किसान का खेत मजबूर बनकर रह जाना तय है।

ये महाजनी सभ्यता कभी भी जनसमुदाय को सौहार्द्ध और सहृदयता के साथ कभी नहीं रहने देती, महाजनी सभ्यता बांटती है लड़वाती है समाज में आराजकता का वातावरण पैदा करती है। वर्तमान समय में भारत का साम्प्रदायिक और कट्टरपंथी माहौल इन्हीं की देन है।

i|epUn%, d tuy[kd

31 जुलाई 1880 को बनारस शहर के नजदीक लमही गांव में धनपत राय ने सरकारी सेवा करते हुये जब लिखना प्रारम्भ किया तब उन्होनें स्वयं को नवाबराय कहा जाना पसन्द किया। नबाबराय का पहला कहानी संग्रह 'सोजेवतन' था। इसमें देशप्रेम से भरी पाँच कहानियाँ थी। ब्रिटिश हुकूमत ने सोजवतन जब्त कर लिया। इसी के बाद नबाब राय अब प्रेमचन्द हो गये। प्रेमचन्द नाम से पहले कहानी लिखी– 'बड़े घर की बेटी।' प्रेमचन्द पाश्चात्य विचारों और संस्थाओं के अन्धानुकरण के विरोधी थी। वे धरती के सच्चे पुत्र थे। भारत की धरती से उन्हें लगाव था। भारतीय साहित्य में किसान–जीवन के सर्वश्रेष्ठ सृष्टा थे।

कहानी, 'दुनियाँ का सबसे अनमोल रतन' में प्रेमचन्द प्रश्न उठाते हैं कि संसार में सबसे मूल्यवान वस्तु क्या है? उस पिता के अश्रु–बिन्दु नहीं, जिसके पुत्र को मृत्युदण्ड मिला है, न सती के शरीर की भस्म जो अपने पति की चिता पर होम होती है– 'वरन–खून की वह आखिरी बूंद जो देश की आजादी के लिये गिरे, वहीं दुनियाँ का सबसे अनमोल रतन है।'' ''उनका ख्याल था कि कड़ी जद्दोजहद के बगैर कुछ हासिल न होगा और वह इसके लिये आवाम को जल्द से जल्द तैयार करना चाहते थे। प्रेमचन्द का ख्याल था कि हुकूमत से सख्त टक्कर लिये बगैर काम न चलेगा–.....।''

प्रेमचन्द जमींदार और उद्योगपति दोनों के ही द्वारा किये जा रहे शोषण और उत्पीड़न का विरोध करते हैं। उनके विचार से समाजवाद, औद्योगिकीकरण की विषमताओं का समाधान प्रस्तुत नहीं करता। 'कायाकल्प' की केन्द्रीय समस्या इस पृथ्वी पर न्याय की खोज है– ''ईश्वर ने ऐसी सृष्टि की रचना ही क्यों की जहाँ इतना स्वार्थ, द्वेष और अन्याय है। क्या ऐसी पृथ्वी न बन सकती थी, जहाँ सभी मनुष्य, सभी जातियाँ प्रेम और आनन्द के साथ संसार में रहती। यह कौनसा इन्साफ है कि कोई तो दुनियाँ के मजे उड़ाये, कोई धक्के–खाये, एक जाति

दूसरी का रक्त चूसे और मूंछो पर ताव दे, दूसरी कुचली जाए और दाने दाने को तरसे। ऐसा अन्यायमय संसार, ईश्वर की सृष्टि नहीं हो सकता।

'कर्मभूमि अपनी क्रांतिकारी चेतना के कारण विशेष महत्वपूर्ण है। हर कहीं जनता उठ रही है। उसको रोकना और संयमित करना असम्भव है। कठोर से कठोर दमनचक्र भी उन्हें दवा नहीं सकता। समकालीन परिस्थितियों में हड़ताल के समर्थन में– ''हाँ हड़ताल कीजिये। मगर यह हड़ताल एक या दो दिन की न होगी, यह उस वक्त तक रहेगी, जब तक नगर के विधाता हमारी आवाज न सुनेंगे। हम गरीब है, दीन हैं, दुखी हैं पर हमने ही उन्हें बड़ा आदमी बना दिया है। ये बड़े–बड़े महल जान हथेली पर रख कर कौन बनाता है। इन कपड़ों की मिलो में कौन काम करता है ? सफाई कौन करता है? कौन कपड़े धोता है? सबेरे अखबार और चिट्ठियाँ लेकर कौन पहुँचाता है? शहर के तीन–चौथाई आदमी एक चौथाई के लिये अपना रक्त जला रहे हैं।''

9 ओर 10 अप्रैल 1936 को प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्द ने कहा– मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुलना पर तौलता हूँ। हमें सुन्दरता की कसौटी बदलती होगी।

जिन्हें धन–वैभव प्यारा है, साहित्य मन्दिर में उनेक लिये स्थान नहीं है। यहाँ तो उन उपासकों की जरूरत है जिन्होनें सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश हो। हम तो समाज का झण्डा लेकर चलने वाले सिपाही है।

'गोदान प्रेमचन्द के साहित्यिक जीवन का उत्तुंग शिखर है। इस उपन्यास में वे जमीदारी और औद्योगिकीकरण दोनों पर ही आघात करते हैं। चाहे खेत हो या फैक्ट्री, मेहनतकश का दोनों ही जगह कठोर उत्पीड़न होता है। प्रेमचन्द होरी के चरित्र में भारत की सम्पूर्ण पीड़ा और अन्तर्व्यथा को साकार करते हैं। होरी ही भारत है जिसका शताब्दियों पर्यन्त शोषण और उत्पीड़न हुआ है। प्रेमचन्द अपने लेखन को समाजवादी दिशा देते हैं। वे हमें

ऐसे जीवन का स्वप्न देते हैं, जहाँ न शोषण है, न पीड़ा। इस जीवन को यथार्थ बनाने के संघर्ष में जूझता होरी उपन्यास के अन्त में सद्‌गति प्राप्त करता है।

मृत्यु से कुछ समय पूर्व लिखा गया निबन्ध 'महाजनी सभ्यता' लेखक की हैसियत से प्रेमचन्द का वसीयतनामा है। इस निबन्ध में प्रेमचन्द ने आधुनिक समाज की सभी दुर्व्यवस्थाओं का कारण लाभ की मनोवृत्ति को माना है। उन्होनें लिखा है– ''इस महाजनी सभ्यता में सारे कामों की गरज महज पैसा है। आज दुनियाँ में महाजनों का राज्य है। मनुष्य समाज दो भागों में बट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने–खपने वालों का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किये हुये हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रूरियायत नहीं। उनका अस्तित्व केवल इसलिये है कि अपने मालिकों के लिये पसीना बहाये, खून गिरायें और एक दिन चुपचाप इस दुनियां से विदा हो जाये।

भारत में दानवी डगों से बढ़ती औद्योगिकता से प्रेमचन्द चिन्तित थे। कारखाने का बढ़ता जाल किसानों की जमीन को भी समेट लेगा। सामान्य श्रमजीवी का क्रूर शोषण होगा। जीवन और संस्कृति दोनों ही विकृत होंगे। असामाजिकता को बल मिलेगा। प्रेमचन्द यह समझ पाने में असमर्थ थे कि यन्त्र का विकास मनुष्य को श्रम से मुक्ति दे सकता है ?

प्रेमचन्द के कृतित्व के बाद हिन्दी उपन्यास ने पूर्णतः प्रौढ़ता प्राप्त की। प्रेमचन्द के कृतित्व में हिन्दी उपन्यास जीवन के बहुत समीप आ गया जो यथार्थ का वास्तविक अंकन करता है। वे ऐसी भाषा में लिखते थे जिसे सब समझ सके। उनके साहित्य की पहुँच बुद्धिजीवी वर्ग की संकुचित परिधि तक सीमित न थी। प्रेमचन्द वास्तव में जन लेखक थे।

izsepUn % fojkl r vkj o lh;r

प्रेमचन्द पर किसी भी परिचर्चा से पूर्व यह जरूरी है कि हम प्रेमचन्द कालीन भारतीय समाज की संरचना, समस्यायें और उनकी विरासत की जानकारी प्राप्त करें।

प्लासी के युद्ध के बाद 1973 में जमीन पर ग्रामीण समाज का मालिकाना हक खारिज कर स्थायी बन्दोबस्ती व्यवस्था के द्वारा किसानों के सिर पर अभिजात्य जमींदारों और ताल्लुकेदारों नामक परजीवियों को बैठा दिया गया। 'सर', 'नाइट' 'रायबहादुर' आदि तमाम सरकारी पदवियों से अलंकृत इस विशिष्ट समुदाय का काम था – अंग्रेजों की जी हुजूरी करना, किसानों पर शासन करना और किसानों से हर हालत में लगान वसूल करना। राजस्व वसूली की इस ठेकेदारी प्रथा में केवल किसान की जिम्मेदारी थी कि उस पर आश्रित परजीवी जमींदारों और सर्वोपरि ईस्ट इंडिया कम्पनी और बाद में ब्रिटिश इंडिया की सर्वग्रासी भूख को शान्त करने की। परिणामतः किसानों और कारीगरों का पुराना स्वाभाविक जीवन कहीं खो सा गया। उन्हें मिली भूख और गरीबी। जमींदार– ब्रिटिश राज की संयुक्त शोषण व्यवस्था से सर्वत्र हाहाकार फैल गया। कई भयंकर अकाल पड़े। विध्वंस के इस प्रवाह में किसानों के धैर्य का बाँध टूट गया। देश में एक के बाद एक किसान विद्रोह होने लगे। सन्यासी विद्रोह से लेकर सन्थाल विद्रोह तक, विद्रोहों का एक अटूट सिलसिला चल पड़ा जिसकी परिणति थी 1857 की महान क्रान्ति।

1857 की महान क्रान्ति असफल जरूर रही, किन्तु इसी के साथ ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन, आदि के माध्यम से तमाम सुधारवादी आन्दोलन भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक अवरोधों के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करने लगे। सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह, अछूत समस्या, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास आदि तमाम

समस्याओं पर वैचारिक आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। 1885 में कांग्रेस पार्टी की स्थापना हो चुकी थी। गदर पार्टी के नेतृत्व में क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भ हो चला था। कार्ल मार्क्स की विचारधारा विश्व को प्रभावित कर रही थी। भारत भी इससे अछूता नहीं था।

इस सामाजिक–राजनैतिक पृष्ठभूमि में नवाबराय की पहली पुस्तक 'सोजेवतन' 1908 में प्रकाशित होती है। 'सोज़ेवतन' की भूमिका और इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी को लिखे पत्र से 'नबावराय' की समाज एवं देश के प्रति संवेदनशीलता की जानकारी प्राप्त होती हैं– पत्र का मजमून है–

अपनी एक नाचीज किताब (सोज़े वतन) खाना–ए–खिदमत (सेवा में प्रेषित) करता हूँ। मुनासिव रिव्यू फर्मा कर मशकूरी (कृतज्ञता) का मौका दीजिये। उम्मीद है रिव्यू किसी ताजा अंक में निकलेगा। यह किताब नफाए–आम (जनहित) में लिखी गई है। इस लिहाज़ से कीमत भी कम रखी गई है। जाती (निजी) नफा मक्सूद (नहीं) है।''

'सोज़े वतन' की भूमिका में नबावराय लिखते हैं– ''हरेक कौम का इल्म–औ–अदब अपने जमाने की सच्ची तस्वीर होता है, जो खयालात कौम के दिमाग को मतहर्रिक (सक्रिय) करते हैं और जो ज़ज्वात कौम के दिलों में गूंजते है वो नज्म–औ नस्त (गद्य–पद्य) के सफों में ऐसी सफाई से नज़र आते हैं जैसे आइने में सूरत। आज के जमानें के कसम व हिकायत (किस्से तथा कहानी) ज्यादातर इस्लाह (सुधार) और तज्दीद (नवीनता) का पहलू लिये हुये हैं। अब हिन्दुस्तान के कौमी ख्याल ने बालोगीयत (बालिगपन, बुद्धिमता) के जीने पर एक कदम और बढ़ाया है और हुब्बे–वतन के ज़ज्वात लोगों के दिलों में उभरने लगे हैं। क्यूंकर मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता? ये चन्द कहानियाँ इसी असर का आगाज़ (प्रारम्भ) है और यकीन है कि जूं–जूं हमारे ख्याल वसीयत (विस्तृत) होते जायेगें, इसी रंग के लिटेचर को रोज–अफ्जो (प्रतिदिन बढ़ना) फरोग (उन्नत) होता जायेगा। ''हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की सख्त जरूरत है जो नयी नस्ल

के ज़िगर पर हुब्बे–वतन (देश प्रेम) की अजमत (महिमा) का नक्शा जमाये।

जैसा कि स्वाभाविक था, तत्कालीन अंग्रेजी शासन ने 'सोज़े वतन' की जब्ती के आदेश दे दिये। पाँच सौ प्रतियाँ जलाकर राख कर दी गई। किंन्तु 'नबावराय' की कलम से निकलने वाला देश प्रेम एवं दलित संघर्ष का प्रवाह गतिमान हुआ जो अविराम प्रखर से प्रखरतर होता गया। हाँ, अब वे नबावराय न रहकर प्रेमचन्द हो गये थे।

'सोज़े वतन' की पहली कहानी– ''दुनियाँ का सबसे अनमोल रतन'' में प्रेमचन्द लिखते हैं– ''खून का आखिरी कतरा जो वतन की हिफाज़त में गिरे, दुनियाँ का सबसे अनमोल रतन है।''

दूसरी कहानी 'मेरा वतन' में– ''दुनियाँ की कोई भी इच्छा, कोई भी आकांक्षा मुझे यहाँ से नहीं हटा सकती, क्योंकि यह मेरा देश है, मेरी प्यारी मातृभूमि है, और मेरी लालसा है कि मैं अपने देश में मरूँ।''

विदेशी शासन से मुक्ति के साथ–साथ यह भी जरूरी है कि सामाजिक विषमताओं, रूढ़ियों, अन्ध विश्वास और साथ ही आर्थिक असमानता के खिलाफ भी जंग की जावे। इसी क्रम में 'सोज़े–वतन' से आगे बढ़कर 1918 में सेवा सदन, 1921 में प्रेमाश्रम, 1925 में रंगभूमि, 1932 में कर्मभूमि आदि उपन्यासों के माध्यम से प्रेमचन्द ने विविध समस्याओं को चिन्हित किया।

सेवा सदन में प्रेमचन्द स्त्री समस्या से रूबरू होते हैं। दहेज अनमेल विवाह, सामाजिक रूढ़ियाँ, पुलिस वर्ग के काले कारनामों का सजीव चित्रण है, इस उपन्यास में।

प्रेमाश्रम ग्रामीण जीवन की विषमताओं और किसानों की समस्या पर आश्रित है। जमींदारों का अत्याचार, ताल्लुकेदारों का विलासी जीवन, पटवारी–कारिन्दों– मुंशी–पुलिस और अदालत के चंगुल में फंसा आम आदमी–किसान, यही कथावस्तु है प्रेमाश्रम की।

रंगभूमि, भारतीय जनजीवन का रंगमंच है। एक साथ औद्योगिक और ग्रामीण जीवन की तुलना, पूंजीवाद का विरोध, व्यक्ति के अधिकारों की

सुरक्षा, धार्मिक रूढ़िवादिता का विरोध, राष्ट्रीय स्वतंत्रताके लिये जन–आन्दोलन का समर्थन, देशी राज्यों की कुत्सित राजनीति पर केन्द्रित है यह उपन्यास।

कर्मभूमि में प्रेमचन्द नगरीय और ग्रामीण दोनों जीवन धाराओं में राजनैतिक चेतना का संचार करना चाहते हैं। मन्दिरों में अछूतों का प्रवेश, महन्तों का आडम्बर और भोगलिप्सा, अन्धविश्वास आदि तमाम सामाजिक आर्थिक समस्याओं के साथ ही मजदूर किसानों की हीनावस्था, सरकारी दमन, पूंजीपतियों का शोषण आदि समस्याओं का चित्रण कर्मभूमि में है।

इस प्रकार विभिन्न उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र की प्रायः प्रत्येक समस्या पर अपनी पैनी कलम से वार करते हुये 1936 में प्रेमचन्द की प्रौढ़तम अमर कृति 'गोदान' आती है। गोदाम एक महागाथा है, प्रेमचन्द का वसीयतनामा है। गोदान प्रेमचन्द की वसीयत विरासत दोनों एक साथ है। तमाम प्रश्न हैं इसमें, भावी समाज, भावी दुनियाँ कैसी होगी, इस ओर एक निश्चित दृष्टि भी है गोदान में।

1947 में हमने स्वराज्य पाया, किन्तु आधा अधूरा। क्योंकि जिन प्रश्नों की ओर प्रेमचन्द ने इशारा किया था, उनके हल खोजना आज भी शेष है। उन प्रश्नों का सुलझा लेने के बाद ही हम प्रेमचन्द की नजरों में स्वाधीन कहलाने लायक बन सकेंगे।

प्रश्न हैं– (1) होरी की मृत्यु सहज स्वाभाविक है, या इस मत्यु की जिम्मेदार कुछ शक्तियाँ हैं।

(2) भूमण्डलीकरण के इस दौर में हजारों किसानों की आत्म हत्या का जिम्मेदार कौन है?

भारत का किसान प्राकृतिक विपत्तियों और साथ ही सामाजिक आततायीं शक्तियों से सदैव ही जूझता रहा है। गोदान में कहीं प्राकृतिक विपत्ति नहीं है। यहाँ सामाजिक शक्तियाँ है जो उसे नष्ट करने पर आमादा हैं। किसानों को मारने और बर्बाद करने वाली ताकतें एकजुट हैं। यह एकजुटता ब्रिटिश राज से बढ़ती हुई स्वाधीन भारत में और अधिक सुदृढ़ और धनीभूत हुई है।

धनियाँ – पंडित दातादीन, झिगुरी सिंह, पंडित नोखेराम, मगरू साहू, लाला पटेश्वरी इन सबसे ''हत्यारा और खून चूसने वाला कहती है, धनियाँ। गाँव में इन्हीं का दबदबा है। ये सभी शोषक हैं और वास्तविक स्वराज की प्राप्ति में बाधक।

मिर्जा खुर्शीद– लखनऊ में जूतों की दुकान के मालिक है आप फरमाते है– ''जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं वह व्यवहार में बड़े–बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी मार ले जाता है जिसके पास रुपये हैं। रुपयों के जोर पर सभी सुविधायें तैयार हो जाती हैं। ये सब बातों के धनी हैं, एक दूसरे के साथी हैं, सब मिले हैं।'' मेहता का कथन है– आज संसार का शासन तंत्र बैंकरों के हाथ में हैं।''

1936 के बाद से आज तक क्या कुछ बदला है ? सब कुछ ''महाजनी सभ्यता'' में वर्णित अर्थ व्यवस्था की भेंट चढ़ चुका है। ऐसे में कबीर का यह पद कितना सामयिक हैं :–

''अब न बसूं इहि गाँव गोसाई,
सब मिलि मोके मारे हो राम।

कबीर के समय में भारत गाँवों का देश रहा होगा, तभी उन्होनें कहा इस गाँव में नहीं तो दूसरे गाँव में ही सही कहीं तो जगह मिलेगी। पर आज तो पूरी दुनियाँ एक गाँव में बदल चुकी है। तभी तो आत्महत्या एक रास्ता बचत है, आसान सा रास्ता, उस दूसरे गाँव जाने का–

अब न बसूंइहि गाँव गोसाई, सब मिलि मोको मारे हो राम। **लोग कहते हैं– ''भारत गाँवों में बसता है।'' गलत कहते हैं लोग। असलियत यह है कि– 'भारत गाँवों में मरता हैं।''**

इस परिप्रेक्ष्य में, सेज (Special Economic Zone : SEZ) पर चर्चा यहाँ प्रासंगिक लगती है क्योंकि–

* एक सेज का क्षेत्रफल 5000 हेक्टेयर यानी 12500 (साढ़े बारह हजार) एकड़ तक हो सकता है।

* इस क्षेत्र पर पंचायत, नगर पालिका अथवा देश का कोई कानून लागू नहीं होगा।
* इस क्षेत्र में पूंजीपतियों के लिये खुली छूट होगी। इसलिये SEZ में जिन्हें काम मिलेगा, सच मानें में वे इक्कीसवीं सदी के बंधुआ मजदूर होंगे।
* बंगलूर, मद्रास में अभी जो Export Zone है, वहाँ का वातावरण जेल जैसा है। ऊँची दीवारों से घिरा एक इलाका, 12–12 घन्टे, 14–14 घन्टे की पारीं।
* सच कहा जाये जो यह Special Exploitation Zone हैं। खुल्लम खुल्ला शोषण। जबकि पूंजीपतियों के लिये छूट ही छूट। पूंजीपतियों के लिये ये Special Exemption Zone हैं।

किसकी जमीन पर SEZ बनेगा ? आम किसान भूमिधर से भूमिहीन मजदूर बनेगा। अपने को जंगल का दावेदार कहने वाला आदिवासी समुदाय विस्थापित होगा। तब इसी की कोख से पनपता है लालगढ़, पैदा होते हैं नक्सली, माओवादी। ये समस्यायें पेट की हैं, जिन्दा रहने के हक की, कानून की नहीं। इस माहौल में 1084 वें की माँ का दर्द समझने की मानसिकता क्या आज की सरकारों के पास है। इन सबके बावजूद हद तो तब हो जाती है जब इतनी दीर्घ अवधि व्यतीत हो जाने पर आज तक सेज़ की जमीन पर कोई कार्य नहीं हो पाया है। कारपोरेट उस जमीन को सरकार को वापस करने के प्रयास में है।

चाहे कोई भी युग रहा हो जनता की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिये राज सत्ता नैतिक रूप से बाध्य रही है। लेकिन अब तो, चिकित्सा, शिक्षा, भूख, सुरक्षा की जिम्मेदारी से भी मुक्ति प्राप्त कर ली गई है जिससे सरकार के होने पर ही प्रश्न चिन्ह आ गया है। जिसकी जेब में दम हो वहीं जिन्दा रहें। पूँजीवादी व्यवस्था में विद्या, सेवा, त्याग, बलिदान आदि मानवीय मूल्य निरर्थक हैं।

इन प्रश्नों के उत्तर जब तक प्राप्त नहीं होते तब तक जरूरत है

''आहुति'' के नायक विश्वम्भर जैसे युवाओं की जो अपनी परीक्षा और कैरियर की आहुति देकर गांव जाने का फैसला लेकर प्रेमचन्द की विरासत के प्रश्नों का हल खोंजने का प्रयास करें। ताकि स्वधीनता की दूसरी लड़ाई हेतु किसानों, मजदूरों और आम जनता को जागरूक किया जा सकें। प्रति वर्ष प्रेमचन्द को याद करने की बजह शायद यहीं है।

सन्दर्भ

रविभूषण : 'बेटी की मृत्यु और किसानों की आत्महत्या', जनमत, वर्ष 25, अंक–1, पृष्ठ 16–18

दीपंकर भट्टाचार्य : 'सेज और विकास व लोग' जनमत, वर्ष 26, अंक–2, पृष्ठ 13–20

fopkj dHkh e jrk ugh

14 अक्टूबर 2006 को महाराष्ट्र के चन्द्रपुर में आयोजित मेले में दानिश बुक्स और दानिश डिस्ट्रीब्यूटरर्स दिल्ली की ओर से पुस्तक प्रदर्शनी लगाने पहुँची सुनीता कुमारी को उस मेले में सम्मिलित होने से रोकने हेतु पुलिस की पर्याप्त व्यवस्था थी। पर्याप्त जाँच–पड़ताल के पश्चात एस0पी0 का प्रश्न होता है– ''वह इतिहास क्यों पढ़ाना चाहती हैं, जिस पर खून के छीटे पड़े हैं? आप क्यों लोगों को भगत सिंह को पढ़ाना चाहती हैं? अब तो हमारा देश आजाद है, हमारा अपना संविधान है, अंग्रेज तो चले गये, अब भगत सिंह की जरूरत क्या है? भगत सिंह की जरूरत आज इसलिये और भी ज्यादा है क्योंकि भगत सिंह का प्रश्न था– 'गोरो के स्थान पर जब भूरों का शासन आयेगा, तब क्या विकास की किरण समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े आम आदमी तक पहुँचेगी? पर अफसोस्! आजादी के बाद कुर्सी पर अधिकार जमा लिया है–

राजनीति को व्यवसाय बनाने वालों ने, सफेदपोस अपराधियों ने
उनके साये में पलने वाले गिरोह बन्दों ने, राजनीति अब सेवा नहीं है
कुर्सी सलामत रहे, इसके लिये हर जोड़–तोड़ जरूरी है।

''इंकलाब जिन्दावाद'' का नारा भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के कंठ से गूँजा, और आज तक इसकी गूंज देश में सुनाई दे रही है। हर राजनैतिक सभा का प्रारम्भ और अन्त इंकलाब जिन्दावाद से होता है। भारत में इंकलाब जिन्दावाद का प्रवर्तक हंसते–हंसते फांसी पर झूल गया। सुनते हैं उसने मजिस्ट्रेट से कहा था, 'तुम धन्य हो, जो यह देख सके कि विप्लव के पुजारी किस तरह हंसते हुये मृत्यु का आलिंगन करते हैं। ''सचमुच मजिस्ट्रेट धन्य था, क्योंकि न केवल हम, बल्कि उसके मां–बाप, सगे–सम्बन्धी को भी लाश तक देखने को न मिली। हाँ! सुनते हैं, किरासिन के तेल में अधजले मांस के कुछ पिंड, हड्डियों के कुछ टुकड़े और इधर–उधर बिखरे

खून के कुछ छीटें मिले, बस।

उसे यह फ़िक्र है हरदम नया तर्जे–जफ़ा क्या है।
हमे यह शौक है देखें, सितम की इन्तहा क्या है।।

सितम की इस इन्तहा का पता लगाने के लिये ही भगत सिंह जैसे विप्लवी पैदा होते हैं। तत्कालीन शासन के बारे में रामवृक्ष बेनीपुरी लिखते हैं– ''हमारा समाज, हमारा परिवार, हमारी सरकार आज जिस रूप में है, क्या वह वर्दाश्त करने लायक है, जिसमें व्यक्तित्व विकसित नहीं हो सकता। बन्धुत्व और समानता के लिये कोई स्थान नहीं। मनुष्य के जन्म सिद्ध अधिकार 'स्वतंत्रता' का वह दुश्मन है।'' इन बदतर हालातों के खिलाफ आवाज बुलन्द करने के लिये ही तो भगत सिंह का जन्म जालन्धर जनपद की बंगा तहसील के गाँव खटकड़ कलां में 28 सितम्बर 1907 को हुआ था। इस इलाके में एक नहर खुदी थी। इस सिंचित इलाके में भू–राजस्व तथा अन्य शुल्कों में भारी वृद्धि के खिलाफ एक शक्तिशाली किसान आन्दोलन हुआ था। इसी आन्दोलन के बीच से निकला था एक अमर गीत– 'पगड़ी संभाल जट्टा, पगड़ी संभाल।' इस आन्दोलन के नेताओं में सरदार अजीत सिंह (भगत सिंह के चाचा) और लाला लाजपत राय शामिल थे।

1915 का पहला लाहौर षड़यंत्र केस। इसमें दो दर्जन से अधिक नौजवानों को फांसी दी गई थी। सबसे कम उम्र का था, 16 वर्षीय कर्तार सिंह सराभा। कर्तार सिंह सराभा भगत सिंह का आदर्श था। सराभा की फोटो भगत सिंह सदैव अपने पास रखते थे।

साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ पूरे विश्व में जो भी लड़ाइयाँ लड़ी गईं, उनमें भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम अपनी विशिष्ट जगह रखता है। 1957 से प्रारम्भ यह संग्राम, भगत सिंह तक (1928) आते–आते इंकलाब की लड़ाई में बदल चुका था। 1914 का गदर पार्टी आन्दोलन पूरी तरह साम्राज्यवाद विरोधी, सामन्त विरोधी और सही मायने में क्रान्तिकारी आन्दोलन था। जिसमें हरदयाल जैसे बुद्धिजीवी और सराभा जैसे नौजवान शामिल थे।

वास्तव में, 1957 से 1947 तक चले स्वतंत्रता आन्दोलन में साम्राज्यवाद एवं सामन्तवाद विरोधी स्पष्ट इंकलावी आन्दोलन दो ही थे– 1914 का ''गदर पार्टी आन्दोलन'' और 1928 से 1931 के मध्य भगत और आजाद के नेतृत्व में 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ' आन्दोलन। भगत सिंह का जीवन काल भारत ही नहीं पूरे विश्व में क्रान्तिकारी आन्दोलन के उत्थान और उफान का काल था। गदर पार्टी आन्दोलन के समय भगत की आयु 7 वर्ष थी। सराभा की फांसी के समय 8½ वर्ष, रूस की क्रान्ति के 10 वर्ष, जलियावाला बाग काण्ड के समय 12 वर्ष, चौरी–चौरा काण्ड के 15 वर्ष थी। पिता किशन सिंह कांग्रेस पार्टी के सक्रिय सदस्य थे। किन्तु फिर भी चौरी–चौरा काण्ड के कारण (1922), 15 वर्षीय भगत का कांग्रेस और साथ ही गांधी से मोह भंग हो गया। 1924 में भगत सिंह ने लिखना शुरू किया, उस समय उनकी आयु 17 वर्ष की थी। उनका पहला लेख था– ''पंजाब की भाषा और लिपि की समस्या।'' यह लेख हिन्दी में था। भगत सिंह की जेल नोट बुक में 107 लेखकों और 43 पुस्तकों के शीर्षक दर्ज हैं। भगत सिंह ने जेल को अपना अध्ययन केन्द्र बना डाला। पत्रकारिता के क्षेत्र में भगत ने कार्य किया था।

दिल्ली के 'वीर अर्जुन' और 'महारथी' पंजाबी पत्रिका 'किरती' में विद्रोही नाम से, सा0 प्रताप में बलवन्त नाम से, चाँद (इलाहाबाद) में विभिन्न छदम् नामों से लिखा, इसी बीच ड्रेन ब्रीन की आत्मकथा ''आयरलैण्ड का स्वतंत्रता संग्राम'' का अनुवाद किया। इस तरह 1924 से 1928 का समय भगत सिंह के अध्ययन और चिन्तन का उत्कर्ष काल है।

1926 में ईश्वर को नकारते हुये कहते है– तार्किक विश्वास सराहनीय है। सिर्फ विश्वास और अन्धविश्वास खतरनाक होते हैं। ये दिमाग को कुन्द बना देते है और आदमी को प्रतिगामी। अगर भारत में ब्रितानी शासन है तो, ईश्वर की इच्छा के कारण नही, वल्कि इसलिये कि हमारे अन्दर विरोध करने का साहस नहीं है। उन्होंने हमें ईश्वर की सहायता से गुलाम नहीं बनाया बल्कि बन्दूक, तोप, बम, गोलियों, पुलिस और फौज़ की

सहायता से गुलाम बनाया है। दोष हमारा है। तभी वे (ब्रितानी) समाज के खिलाफ सबसे ज्यादा घिनौना अपराध यह कर रहे हैं कि एक राष्ट्र के खिलाफ दूसरा राष्ट्र लुट रहा है। कहाँ है ईश्वर? वह क्या कर रहा है? क्या वह मानवता के दुखों का मजा ले रहा है? क्या वह नीरो और चंगेज खाँ है?

क्रान्ति जनता द्वारा जनता के हित में होती है। क्रान्ति का हमारा लक्ष्य एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। क्रान्ति का उद्देश्य श्रेणी बिहीन समाज की स्थापना करना, किसी भी प्रकार के शोषण (जाति, धर्म, आर्थिक) से जनता को मुक्त कर, उसे आत्म निर्णय द्वारा जीने का अवसर प्रदान करना है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, वल्कि इन्कलाव की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है। अंग्रेजी दासता का अन्त, यह तो पहला मोर्चा है। अन्तिम लड़ाई हमें शोषण के खिलाफ लड़नी होगी। यह शोषण मनुष्य द्वारा मनुष्य का हो या एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का।

भगत सिंह ने विश्वास के साथ कहा था– ''फांसी के वाद मेरे विचारों की खुशबू इस देश के वातावरण में व्याप्त हो जायेगी। यह नौजवानों को मदहोश करेगी। वे स्वतंत्रता और क्रान्ति के लिये पागल हो जायेंगे। नौजवानों का यह पागलपन ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश करेगा।'' और ऐसा हुआ थी।

हवा में रहेगी मेरे ख्याल की बिजली।
ये मुश्ते–ख़ाक है फानी, रहे रहे न रहे।।

जिस दिन उन्हें फांसी लगी, उनकी कोठरी से लेनिन की एक किताब मिली थी। जिसका एक पन्ना मुड़ा हुआ था। इस देश की जवानी को भगत सिंह के आखिरी दिन के मोड़े हुये पन्ने से आगे बढ़ना है। आखिर क्यों? क्योंकि उनके प्रश्नों का उत्तर अभी तक नहीं मिला? आज़ादी के इतने साल बाद भी वास्तविक आजादी अभी भी सपना है। उनके प्रश्न थे– हमारी आजादी कैसी होगी? किस तरह जनता को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया जायेगा। लोग अपना काम कैसे करेंगे। अधिकार क्या होंगे। देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक हालात कैसे होंगे। यदि ये

हालात बदतर है तो ऐसी आजादी का मतलब क्या है? जब तक देश में किसी भी तरह की असमानता बरकरार है, तब तक आजादी मिलने के बाद भी आजादी का उपयोग नहीं किया जा सकता। आर्थिक असमानता रहने पर शोषण बदस्तूर जारी रहेगा। ऐसी सूरत में आजादी का कोई अर्थ नहीं।

आज का परिदृश्य भयानक बदहाली में है। समाज को जाति और साम्प्रदायिक समूहों में बांट दिया गया है। जिन्हें जेलों में होना चाहिये वे सांसद और विधायक बनकर कानून बना रहे हैं। अब तो प्रतिवद्ध न्यायपालिका की बात भी सुनाई पड़ने लगी है। सरकार किसी भी दल की क्यों न हो, विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के शिकंजे में है। बाजारीकरण के बढ़ते कदम ने बेहतर शिक्षा और चिकित्सा को आम जनता की पहुंच के बाहर कर दिया है। किसानों की जमीनों पर भी निगाहें है– 'सेज' के नाम पर, बड़े उद्योगों के नाम पर, किसान की जमीन पर। आज किसान को उसी की जमीन पर मजदूर बनाने पर तुलीं हैं, नई आर्थिक शक्तियाँ। गोदान के होरी के भाग्य में क्या मजदूरी ही लिखी हैं?

सरकार की आर्थिक नीतियों ने एक बड़ा संकट पैदा कर दिया है। कल का भारत कैसा होगा? कौन मरेगा? कौन बचेगा? नौजवानों के हाथों को काम मिलेगा या नही। इसका संकट सामने है। भगत सिंह, पंजाब का पहला चिन्तक था। जिसने सामाजिक संरचना पर वैज्ञानिक नजरिये से विचार किया था। पहला देशभक्त था जिसके मन में समाज सुधार का एक निश्चित दृष्टिकोण था।

इस परिप्रेक्ष्य में भगत सिंह के विचार, उनकी शदाहत के 75 वर्ष बाद भी सामायिक हैं। ये हमारे लिये चेतावनी है। भगत सिंह का सपना आज भी सपना है। भगत सिंह एक नाम नहीं है, एक प्रतीक है, रोटी का, बगावत का, सुलगते सपनों का, लोक आवाज, दबाई नहीं जा सकती कमी, कुचली नहीं जा सकती। भगत सिंह कभी समाप्त नहीं होते।

सन्दर्भ

सुनीता नारायण – आप भगत सिंह को क्यों पढ़वाना चाहती हैं? पृष्ठ 70–72, हंस 2006

रामवृक्ष वेनीपुरी – इंकलाव जिन्दावाद, जनमत, वर्ष 25, अंकड़, पृ0 155–156

मनोज शर्मा – समय से मुठभेड़ : पंजाबी–कविता के बहाने से, जनमत, वर्ष 25, अंकड़ पृ0 96–104

1857 dh i"BHkfe

10 मई 1857, सिपाही विद्रोह था या आजादी की पहली लड़ाई? वास्तव में 1857 भारत के स्वाधीनता संग्राम की शानदार शुरूआत थी और प्रारम्भ कभी हारता नहीं, पराजित नहीं होता, वल्कि रूप बदल कर, मार्ग बदल कर विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। 1857 के बाद भी ऐसा ही हुआ। विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन, गदर पार्टी, क्रान्तिकारी आन्दोलन से होते हुये, 1942 का जन–आक्रोश, नौसेना विद्रोह, आजाद हिन्द फौज की तारतम्यता से गुजरते हुये, कांग्रेस पार्टी मुख्यतः गांधी जी की सरपरस्ती को स्वीकारते हुये हम 15 अगस्त 1947 को आजाद हुये, तो इसके पीछे 10 मई 1857 की शानदार शुरूआत थी। 'कमल' और 'रोटी' को माध्यम बनाकर साधू–फकीर और सैनिकों ने जाति–धर्म और लैंगिक भेद से दूर रहकर इसे संगठित, प्रचारित और प्रसारित किया था। इस संग्राम के मूल संगठनकर्ता अजीमुल्ला खां और रंगो जी बापू को आजादी के महान नायक के रूप में याद किया जाना चाहिये।

यह तो दुर्भाग्य था कि पूर्व निर्धारित तिथि के पहले ही मेरठ में मंगल पाण्डेय की अगुवाई में विस्फोट हो गया। इससे क्रान्ति के संगठनकर्ता हड़बड़ा जरूर गये, क्योंकि तैयारी पूरी नहीं हो पायी थी। फिर भी वे लड़े। वे भावावेश में नहीं थे, वे जुनूनी भी नहीं थे। उनका संघर्ष मातृभूमि के लिये था। देश के आम जन की उनके साथ साझेदारी थी। वे इसलिये लड़े, क्योंकि लड़ाई जरूरी थी।

1757 में पलासी की लड़ाई के बाद मुगल बादशाह ने 1765 में राजस्व वसूली के संप्रभु अधिकार ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिये थे। दीवानी अधिकार हासिल करने के तीन साल बाद अर्थात 1768 में कर संग्रह नबाव के शासन के मुकाबले तीन गुना हो चुका था। जनता को गुजारे के स्तर से नीचे धकेल दिया गया था। एक फसल के खराब होने के मतलब

था, बड़ी संख्या में मौत। 1770 तक आते–आते भारी अकाल पड़ चुका था। जिसमें बंगाल की तीन करोड़ की आबादी में एक करोड़ लोग भूख से मर गये थे ऐसे माहौल में भी वारेन हेंस्टिंग ने कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स को शेखी भरी रिपोर्ट भेजी थी 'भारी अकाल के बावजूद राजस्व बढ़ा है।'' निर्दयता और दमन की हद थी।

मुगलों की कर प्रणाली को बदलने और किसानों से लगान नगदी में वसूलने की ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति ने कृषि एवं परम्परागत कारीगरी और उद्योगों को नष्ट कर दिया। लगान न दे पाने पर किसानों से उनकी जमीन की बेदखली की परम्परा भी कम्पनी सरकार ने शुरू की थी। अवध, बुन्देलखण्ड, नागपुर, सतारा, तंजौर के राज कम्पनी सरकार ने हड़प लिये थे। डलहौजी ने गोदनामें के कायदे को खारिज कर दिया था। फलस्वरूप नागपुर, झांसी जैसी छोटी–बड़ी रियासतें एक झटके में कम्पनी सरकार के हाथ लग गई। रियासतें गई तो वहाँ के किसानों की जमीनों से लगान वसूली का कायदा भी बदल गया। लगान का नगदी रूप में लेना, लगान न दे पाने पर कुर्की– जब्ती, फलस्वरूप किसानों को अंग्रेजों के घरों में नौकरी करनी पड़ी या फौज में भर्ती होना पड़ा।

1857 में भारत की स्थिति कुछ ऐसी थी कि बोलियाँ, पहनावा और धार्मिक पहचान अलग–अलग होने के बावजूद उनमें एकरूपता थी। हिन्दू–मुस्लिम का भेद नहीं था। कन्नौज और बिठूर के शासकों का दर्द एक जैसा था। मद्रास प्रेसीडेन्सी और लखनऊ प्रेसीडेन्सी की पीड़ा एक जैसी थी। मदरसों और पाठशालाओं का अनुदान रोक दिया गया था। यहाँ की शिक्षा व्यवस्था चौपट कर दी गई। कोई स्कूली कार्यक्रम नहीं चलाया गया। जन कल्याणकारी कार्यो से कम्पनी सरकार को कोई सरोकार नहीं था। 1853 में हाउस आफ कामन में जॉन ब्राइट ने कहा था– 'भारत के हर गाँव में अध्यापक उसी तरह नियमित रूप से मिलता है जैसे मुखिया या पटेल।' मैली ने लिखा है– 'अंग्रेजी राज में मिला लेने के बाद पता चला कि समूचे पंजाब में प्राथमिक पाठशालायें है। सभी सम्प्रदायों और वर्गों के बच्चे पढ़ते

हैं। लड़कियों के लिये भी पाठशालायें हैं। इस शिक्षण व्यवस्था को नष्ट किया गया।

मलमल एवं कपड़ा उद्योग, इस्पात उद्योग आदि विभिन्न उद्योगों को ध्वस्त किया गया, जूट, चाय, रबड़ और नील की खेती को बढ़ाया दिया गया। जिसमें बेगार और बंधुआ मजदूरी के हालात ने आम किसान को भुखमरी के कगार पर धकेल दिया। एनीबेसेन्ट ने अपनी पुस्तक 'इंडिया बाउण्ड आर फ्री' में इतिहासकार टेलर का हवाला देते हुये लिखा है– ''हिन्दुस्तानी माल, हिन्दुस्तानी जहाजों में जब लन्दन के बन्दरगाह पर आया तो इजारेदारों में सनसनी फैल गई। टेम्स नदी में यदि दुश्मन का जहाजी बेड़ा आ जाता तो इससे ज्यादा सनसनी नहीं फैलती।'' कम्पनी सरकार ने अपनी सुनिश्चित नीति के तहत भारत की कृषि, व्यापार, उद्योग–धन्धों सबको चौपट कर दिया था। इस विनाश के शिकार सभी धर्म एवं वर्ग के लोग थे। इसी बात ने भारतीय जन मानस को एकता का भौतिक आधार मुहैया कराया था। 1760 से 1830 के बीच भारतीय संस्थाओं और व्यवस्थाओं के ताने–बाने को नष्ट किया गया।

भारतीय जन मानस में अंग्रेजों के प्रति कितनी घृणा भरी थी, इसके लिये सिर्फ इतना कहना काफी है कि, इस विद्रोह को कुचलनें के लिये अंग्रेजों ने जो घोर पशुता दिखाई उसकी मिसाल दुनियाँ में मिलना मुश्किल है। गाँव–गाँव लोगों को उन्हीं की खाट की रस्सियों से पेड़ों पर लटका कर सामूहिक फांसियां दी गई। उत्तर भारत का शायद ही कोई ऐसा गाँव बचा हो जहाँ फांसी न दी गई हो। गाँव के गाँव जला दिये गये। पाशविकता का यह खेल दो–ढाई साल तक चला। इस तरह लाखों लोगों को मारा गया।

असफलता के बावजूद, इस विद्रोह ने नये राष्ट्रीय विचारों को जन्म दिया। धार्मिक सद्भाव पर जोर देने के अलावा भी विद्रोही नेता एक नयी राष्ट्रीय व्यवस्था की कल्पना कर रहे थे। उन्होंने एक ही प्रकार का निर्वाचन–आधारित सैन्य शासन, स्थापित करने का प्रयास किया था, जमींदारों, किसानों, दस्तकारों को समान रूप से आर्थिक राहत दिलाने का

आश्वासन था और सिपाहियों से बेहतर सेवा स्थितियों का बादा था। पहली जंग का नेतृत्व निश्चित रूप से इस तरह की राष्ट्रीय कल्पना को पालने के श्रेय का पात्र है। यह उस समय किया जा रहा था जब आधुनिक पूंजीवादी अर्थ में राष्ट्रवाद का विकास हुआ ही नहीं था। मार्क्स और एंगेल्स ने 1857 को भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम कहा। कोई भी स्वाधीनता संग्राम राष्ट्रीय चेतना (राष्ट्रवाद) के बगैर सम्भव नही।। 1857 में अजीमुल्ला खां द्वारा लिखित गीत भारत का पहला राष्ट्रगीत है, जिसे गाते हुये सैनिक अंग्रेजों पर आक्रमण करते थे–

'हम हैं इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा,
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा.....
ये है हमारी मिल्कियत–हिंदुस्तान हमारा,
इसकी रूहानियत से रौशन है जग सारा.....
कितना कदीम, कितना नईम, सब दुनियाँ से न्यारा,
करती है जरखेज जिसे गंगे–जमन की धारा.....
ऊपर बर्फीला पर्वत, पहरे दार हमारा,
नीचे साहिल पर बजता, सागर का नक्कारा.....
इसकी खानें उगल रही हैं, सोना, हीरा, पारा,
इसकी शानों–शौकत का दुनियां में जयकारा.....
आया फिरंगी दूर से ऐसा मंतर मारा,
लूटा दोनों हाथ से, प्यारा वतन हमारा.....
आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा,
तोड़ो गुलामी की जंजीरें बरसाओं अंगारा.....
हिन्दू–मुसलमां–सिख, हमारा भाई–भाई प्यारा,
यह है आजादी का झंडा, इसे सलाम हमारा.....

1857 के सैनिकों ने और आम अवाम ने राष्ट्रवाद और धर्म निरपेक्षता का पाठ आधुनिक कालेजों या विश्वविद्यालयों में बैठकर योरोप से नहीं सीखा था। बहादुरशाह जफ़र को सम्राट घोषित किया गया अर्थात क्रान्ति का एक राष्ट्रीय केन्द्र था– बहादुरशाह जफ़र। डुग्गी–डंडी पिटी, कहा गया था–खलक खुदा का, मुल्क बादशाह का और हुक्म बहादुरशाह का। ऐसी ही डुग्गी–डंडी अवध में, जगदीशपुर में और सभी जगह पिटी थी। इस तरह एक राष्ट्रीय चेतना कार्य कर रही थी। दिल्ली में जो निर्देश दिया गया था वह आज भी गौर करने लायक है जिसमें गाय ही नहीं तमाम पशुओं के नाम सम्मिलित थे कि बकरीद के मौके पर इनकी किसी ने बलि दी तो खैर नहीं। यह राजाज्ञा थी। इस प्रकार पंथ निरपेक्षता, राष्ट्रीय स्वाधीनता और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना के मूल्य क्रान्ति में मौजूद थे।

23 जून 1757 को हमारा देश पलासी की लड़ाई में हारा जरूर था। किन्तु 1757 की हार के बाद से ही भारत ने इस पराजय से इन्कार करना शुरू कर दिया था। तभी तो 23 जून 1857 को पलासी के युद्ध का शताब्दी वर्ष मनाया गया था। इसी दिन दिल्ली में और कानपुर में एक साथ अंग्रेजी फौज पर आक्रमण करके संदेश दिया था कि हम हारे नहीं हैं। इतनी दूर किन्तु दोनों ही स्थानों पर सैनिकों में एक ही भावना काम कर रही थी। बंगाल इसी देश का अंग था। वे पलासी और क्लाइव को भूले नहीं थे। 1757 की पलासी की लड़ाई ने निश्चित रूप से 1857 की क्रान्ति की नींव रखी थी।

सन्दर्भ

धर्म पाल – अंग्रेजों से पहले का भारत, रामकृष्ण दिल्ली, 2002

राम विलास शर्मा – अट्ठारह सौ सत्तावन की राज्य क्रान्ति और मार्क्सवाद

प्रणय कृष्ण – 1857 का डर, जनमत, 25(3), पृ0 10–19

अवधेश प्रधान – 1857 की क्रान्ति और साहित्य, जनमत, 25(1), पृ0 62–68

शम्भूनाथ – सामाजिक क्रान्ति के दस्तावेज, भाग दो, पृ0 1266

lkfo/kkfud ,oa lalnh; v/;;u lLFkku]
fo/kku ifj"kn mRrj in'k {k=h; 'kk[kk }kjk
vk;kftr fopkj xk"Bh eiLrr oDr0;

fopkj /kkjk vk/kkfjr jkt uhfr

(15–17 अक्टूबर 1995 नैनीताल)

प्रजातंत्र में प्रजा सर्वोपरि होती है। प्रजा जितनी जागरूक एवं शिक्षित होगी प्रजातंत्र उतना ही श्रेष्ठ होगा। प्रजातंत्र में प्रजा अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से स्वयं पर शासन करती है अर्थात प्रजातंत्र जनता का, जनता द्वारा जनता के लिये चलाया जाने वाला एक ऐसा शासन तंत्र है जो विशिष्ट रूप से जन साधारण की बात करता है। इसमें समाज के सभी घटकों का ध्यान रखा जाता है और सभी के अभ्युदय की बात प्रमुख रूप से अनुमन्य होती है। इस प्रकार प्रजातंत्र में एक आदर्श राज्य की वे सभी विशेषतायें सन्निहित होती हैं जिनसे समाज का चतुर्मुखी विकास सम्भव होता है। सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माँ कश्चिद दुखः भाग्भवेत्। बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय, बसुधैव कुटुम्बकम् जैसी युक्तियों की व्यावहारिक प्राप्ति ही प्रजातंत्र का आदर्श होता है। किन्तु इनकी प्राप्ति के लिये आवश्यक है जीवन मूल्य, आदर्श एवं श्रेष्ठ मानकों की प्राप्ति और सुरक्षा और ऐसा तभी हो सकता है जब आत्मानुशासन का प्राधान्य हो।

जिस प्रकार सौर मण्डल में अनेक ग्रह, उपग्रह अपनी–अपनी परिधियों में भ्रमण करते हुये कभी टकराते नहीं, ठीक उसी प्रकार इस प्रजातंत्र में भी सभी जन मर्यादाओं का पालन करते हुये सीमा का उल्लंघन नहीं करते। प्रजातंत्र में जहाँ नागरिक के अधिकार हैं वहीं उनके कर्तव्य भी हैं। दोनों के सम्यक और सन्तुलित समन्वय से ही स्वनिर्मित नियमों का परिपालन सम्भव है। किसी भी एक के प्रति उपेक्षा के अभाव हमें वह लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता जिसकी आशा की जा सकती है। अधिकारों के प्रति सचेष्ट रहते हुये भी कर्तव्य परायणता आवश्यक है। चरित्रवान और सुयोग्य नागरिक ही अपने राष्ट्र के निर्माता और उसके रक्षक हो सकते हैं।

प्रजातंत्र के अन्तर्गत कार्यपालिका और विधायिका के साथ–साथ न्यायालय को सर्वोच्च स्थान दिया जाता हैं इसमें से प्रत्येक का अपना विशिष्ट स्थान है, न कोई छोटा न कोई बडा। अपनी–अपनी मर्यादाओं का पालन करते हुये तीनों ही एक दूसरे के पूरक है।

वे सामाजिक आदर्श जो स्थायित्व प्राप्त कर लेते हैं उन्हीं को मान्यताओं अथवा सिद्धान्तों का रूप मिल जाता है। मान्यतायें वा सिद्धान्त जब समूह की चेतना में स्थायित्व प्राप्त कर अर्न्तमन में प्रविष्ट कर जाते हैं तो मूल्यों का रूप ले लेते हैं। मूल्य इस बात का दर्पण होते हैं कि अपनी सीमित शक्ति व समय में व्यक्ति क्या करना चाहता हैं। स्वतंत्रता, अधिकार, कर्तव्य, कानून और जीवन की हर राह पर एक पथ प्रदर्शक के रूप में मूल्यों की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार प्रत्येक मूल्य के पीछे सिद्धान्त और विचार धारायें होती हैं। मूल्य सामाजिक आदर्श और लक्ष्यों को व्यक्त ही नहीं करते बल्कि वे सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बधित क्रियाओं को निर्देशित और नियंत्रित भी करते हैं। अतः मूल्य समाज की विशिष्ट निधि होते है, और जब जनता का शासन जनता के लिये, जनता के द्वारा नियंत्रित और संचालित होना है तो यह आवश्यक है कि समाज की प्रत्येक इकाई मूल्यों के प्रति जागरूक हों।

प्रजातंत्र के सफल क्रियान्वयन के लिये आवश्यक है कि देश में व्याप्त विविधता और स्थानीयता के प्रभाव बिन्दुओं के मध्य सामाजिक समता और जनवादी मान्यताओं के सृजन और विकास के लिये सार्थक प्रयास किये जायें। समाज के प्रत्येक वर्ग के मन में व्याप्त भय को दूर कर सुरक्षा का भाव पैदा किया जाय और इसके लिये उनके आर्थिक और शैक्षिक विकास हेतु आवश्यक कदम उठाना अपेक्षित है। आज हमारे प्रजातंत्र के सम्मुख कुछ चुनौतियाँ आ खड़ी हुई है। जिनकी चर्चा करना इसलिये आवश्यक है कि क्योंकि उनसे उपजे कुछ ज्वलन्त प्रश्नों के उत्तर हमें खोजने हैं।

सबसे अहं सवाल है, धर्म और संस्कृति का। सर्वे धर्म समभाव अथवा धर्म निरपेक्षता के नाम पर धर्म को राजनीति से पृथक करने के नाम पर यह निर्णय ले लिया गया कि सरकार धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी। धार्मिक कर्मकाण्ड या पुस्तकों में जैसा वर्णित है ऐसा धर्म न्याय पालिका, कार्य पालिका या विधायिका और साथ ही साथ मानवीय संवेदनाओं और राष्ट्रीयता से किस प्रकार ऊपर हो सकता हैं स्वाभाविक विकास में बाधा उत्पन्न करने वाली धार्मिक उक्तियां जब राष्ट्र से भी बड़ी मान ली जाती है तो यह प्रजातंत्र के लिये चिन्ता की बात है। भारतीय वाडाग्यमय में ''धर्म'' सर्वागींण एवं व्यापक शब्द है। धर्म शब्द में हमारा कर्तव्य, आचरण, विचार सांस्कृतिक संहिता, नीति शास्त्र यहाँ तक कि पूरी जीवन प्रणाली समाहित है। धर्म की ऐसी ही व्याख्या स्वीकृत की जानी चाहिये ताकि साम्प्रदायिक प्रदूषण से मुक्ति मिल सके। प्रत्येक देश की एक सांस्कृतिक पहचान होती है। सांस्कृतिक पहचान से राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होता है। संस्कृति का सम्बन्ध अन्तरात्मा से है। देश काल और परिस्थितियों के आधार पर विभाजन रेखा खींचने का ही परिणाम है, भाषा, क्षेत्र, जाति और उपासना–पद्धति के आधार पर अलग–अलग अधिकारों की माँग है।

प्रजातंत्र के सकल क्रियान्वयन में राजनीतिक दलों की स्वस्थ भूमिका अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य है। किन्तु खेद है कि आज भारत के सभी राजनैतिक दल, आज जन आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के प्रति संवेदनहीन हो चुके है। शायद ही किसी राजनैतिक दल में आन्तरिक लोकतंत्र हो। निर्वाचन का स्थान मनोनयन ने ले लिया है। क्या ऐसे राजनैतिक दल भारत में प्रजातंत्र की नीव को मजबूत बना सकेंगे? विपरीत विचाराधाराओं वाले राजनैतिक दलों द्वारा सत्ता प्राप्ति के लिये किये गये अनमेल गठबन्धनों ने लोकतांत्रिक मूल्यों की अवनति ही की है और इसमें बढावा दिया है वोट बैंक की राजनीति ने। अब जनता वोट बैंक में बदल गई है। वोट की राजनीति ने अस्थायी सरकारों को जन्म

दिया है। देश, क्षेत्रीय, भाषाई, जातीय एवं साम्प्रदायिकता के विभिन्न वोट बैंकों में बांट दिया गया है। इन सब के बीच में प्रजातांत्रिक मूल्यों को बरकरार रख पाना बेहद दुरूह हो गया है, राजनैतिक दलों की असहिष्णुता ने अब तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी आघात करना प्रारम्भ कर दिया है। अपने देश में एक लम्बे दौर से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर विविध तरीकों से सत्ता के प्रतिष्ठानों द्वारा प्रहार किया जाता रहा है जो मत वैभिन्न के कारण कभी प्रेस की बिजली काटने के रूप में, विरोधियों के विचारों को ब्लैक आउट के रूप में, रंगकर्मियों की हत्या के रूप में या समाचार पत्रों को जलाये जाने के रूप में प्रतिफलित हो रहा है। उपरोक्त सभी कार्य असहिष्णुता के विविध प्रकार हैं। और ये सभी हमारी प्रजातांत्रिक व्यवस्था का निषेध भी है। असहिष्णुता ने आपसी सहयोग, और सद्भाव को समाप्त कर प्रजातांत्रिक मूल्यों के समक्ष एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

प्रजातंत्र की सफलताओं में आर्थिक मूल्यों का अपना विशेष महत्व है। रोजी–रोटी के चक्कर में उलझा आदमी क्या जाने कि प्रजातंत्र होता क्या है? जिस देश की 45% से अधिक जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बिता रही हो। वह जानती ही नहीं कि 15 अगस्त कब आता है और 26 जनवरी कब निकल जाती है। राष्ट्रीय त्यौहार क्या सिर्फ सरकार द्वारा मनाये जाने के लिये है? होली, दिवाली और ईद की तरह जब सम्पूर्ण समाज का इन राष्ट्रीय त्यौहारों को मनायेगा तभी प्रजातंत्र की जड़े मजबूत होगी। आर्थिक स्वतंत्रता प्रजातांत्रिक मूल्यों को बल प्रदान करती है।

प्रजातांत्रिक मूल्यों को प्राप्त करने में शिक्षा के महत्व को स्वीकारना ही होगा। प्रगति और विकास का रास्ता शिक्षा के गलियारे से ही गुजरता है। इस सम्बन्ध में एक अनुकरणीय उदाहरण गौर करने लायक है। केरल की एक अछूत जाति इझावस में जन्में नारायण गुरु ने 1902 में ''योगम्'' नाम नाम की एक पंथनिरपेक्ष संस्था स्थापित की। सम्पूर्ण केरल में इस संस्था की शाखायें खोली गई।

योगम् का नारा था– एक जाति, एक धर्म एक ईश्वर। योगम् ने दो महत्वपूर्ण कार्य निश्चित किये। पहला इझावस जाति का उत्थान। इसकी प्राप्ति हेतु जाति के व्यक्तियों ने सबसे पहले अपने से नीची जाति के लोगों से स्पर्शता के सम्बन्ध स्थापित किये। शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिये सम्पूर्ण केरल में पाठशालाओं, स्कूल और कॉलेज खोले गये। कार्यक्रम का द्वितीय पक्ष धार्मिक कर्मकाण्ड और सांस्कृतिक था। मन्दिर एवं सार्वजनिक स्थानों का उपयोग कर सकने की कानूनी मान्यता का पूरा लाभ उठाया गया। पूजा एवं प्रार्थना के लिये मन्दिरों का निर्माण किया गया। विभिन्न धार्मिक कार्यों, शादी, अन्तिम संस्कार आदि से सम्बन्धित विभिन्न कर्मकाण्डों को सरलीकृत एवं व्यावहारिक बनाया गया। समुदाय के धार्मिक, अध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मामलों के मार्ग दर्शन हेतु सन्यासियों की एक श्रंखला का निर्माण किया गया। लगातार 15 साल तक नारायण गुरू ने अपने सन्यासी साथियों के साथ अनेकों वार केरल का गहन भ्रमण किया। इझावसी व्यक्तियों की सहायता की। उनके घर की गलियों की सफाई की। स्वच्छता के महत्व को समझाते हुये उनमें अच्छी आदतों का निर्माण और विकास किया गया। उनके भोजन के तौर–तरीकों में भी बदलाव लाया गया। इस प्रकार पूर्ण योजनाबद्ध तरीके से इस उपजाति को विकास और समृद्धि के पथ की हसी दिशा की ओर मोड दिया गया। इस प्रकार शिक्षा के साथ–साथ संस्कृतिकरण के माध्यम से नारायण गुरू ने केरल की एक अछूत जाति इझावस को सिर्फ तीस वर्षों में पिछड़ी जाति में बदल दिया।

अतः यदि इच्छा है कि प्रजातांत्रिक मूल्य बरकरार रहें तो सबसे पहले हमें स्वयं से जूझना होगा। वैचारिक स्पष्टता और चारित्रिक बल से परिपूर्ण एक सामाजिक सेनानी खुद को बनाना होगा। वैज्ञानिक सोच, सामाजिक संचेतना, श्रम की प्रतिष्ठा तथा कर्तव्य बोध की भावना के साथ–साथ समानता के मूल्यों की स्थापना सिद्धान्त में ही नहीं, व्यवहार में

करनी होगी इन्हीं विचारधाराओं पर और इन्हीं मूल्यों पर प्रजातंत्र का भविष्य निर्भर है। वह प्रजातंत्र जो एक आदर्श शासन व्यवस्था है।

भारत के प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था का भविष्य उज्जवल है, इस तथ्य के बावजूद कि भारत को अभी भी बहुत बड़ी मंजिल तय करनी है, आर्थिक, शैक्षिक और तकनीकी क्षेत्रों में। इसका कारण है भारतीय जन समुदाय की जागरूकता। सैतीश प्रतिशत साक्षरता वाले भारतीय जन समुदाय के पास राजनीतिक भेदभाव करने वाला वह विवेक है जो विश्वविद्यालय की डिग्री रखने वालों के पास नहीं। यह विशाल जन समुदाय साक्षर न सही पर शिक्षित है। जब कभी भी इनके पंथ निरपेक्ष आर्थिक, राजनैतिक तथा जाति पर आधारित मुद्दों के बीच चुनाव करने को कहा गया है तो उन्होनें सदैव प्रजातांत्रिक तरीकों से सही निर्णय दिया है। यही कारण है कि साम्प्रदायिक, जातीय एवं क्षेत्रीय शक्तियाँ सफलता प्राप्त नहीं कर सकी है।

Hkkjrh; yksdr=a dk Hkfo";

(5–7 अक्टूबर 1997 नैनीताल)

भारत ने आजादी के पश्चात संसदीय लोकतांत्रिक पद्धति को अपनाया। आज जब हम स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती मना रहे हैं तो यह आवश्यक है कि इस मौके पर एक लेखा–जोखा तैयार किया जाये ताकि यह जाना जा सके कि इस अन्तराल में हमने क्या पाया है और क्या खोया है। किसी भी देश की जिन्दगी के लिये पचास वर्ष कम नहीं होते। इन पचास वर्षो में निःसन्देह हमने प्रगति की है। कृषि, उद्योग, चिकित्सा, आणविक ऊर्जा, दूरसंचार, परिवहन आदि विभिन्न क्षेत्रों में भारत की उपलब्धियाँ विश्वस्तरीय हैं। किन्तु इसके साथ ही समस्याओं का अम्बार भी है। गरीबी और बढ़ती आबादी जिसमें 48 करोड़ व्यक्ति निरक्षर हैं। नैतिक और सामाजिक मूल्यों का ह्रास, बढ़ता भ्रष्टाचार, और राजनीतिक के अपराधीकरण ने अनेक सामाजिक समस्याओं को पैदा कर दिया है। पूरा समाज जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र, भाषा जैसे विघटनकारी तत्वों की चपेट में आ गया है। इनकी विध्वंसकारी लपटें भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली को चुनौती देती सी प्रतीत होने लगी हैं। यही कारण है कि पश्चिमी देशों की गुप्तचर एजेन्सियाँ यह अनुमान लगा रही हैं कि अगले कुछ वर्षो में भारत विखंडित हो सकता है।

विश्व के वर्तमान परिवेश के संदर्भ में भारतीय लोकतंत्र के भविष्य का आंकलन करने के लिये हम मुख्यतः तीन बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे।

1. अमेरिका की विश्वनीति।
2. भारत की नई अर्थनीति की सम्भावनायें।
3. आर्थिक परिप्रेक्ष्य में भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।

सोवियत संघ के विघटन के बाद अमेरिका और उसके सहयोगी देशों ने सारी दुनिया को अपना बंधक सा समझ लिया है। पिछले सालों में

कई ऐसे मौके आये है जब अमेरिका ने स्वयं को विश्व का दादा साबित करने की कोशिश की है। ईराक का युद्ध इसकी एक मिसाल है। संयुक्त राष्ट्र संघ पर दबाव बनाकर जिस तरह ईराक को कुचलने का काम किया गया वह अपने आप में बेमिसाल है। वर्तमान में आर्थिक तंगी से गुजर रहा अमेरिका अपनी सामरिक श्रेष्ठता को बनाये रखने के लिये भारत और पाकिस्तान की ही तरह पूरी दुनिया को बाँटना चाहता है।

अमेरिका चाहता है कि गरीब मुल्क आपस में लड़ते रहें, विभाजित रहें ताकि उसकी हथियारों की तिजारत चमकी रहे। अमेरिका को अपनी गरीबी दूर करने के लिये बाजार चाहिये। अफ्रीका और एशिया से बेहतर बाजार कहाँ मिलेगा? यही कारण है कि अमेरिका हर कीमत पर अपनी चौधराहट करना चाहता है। यह एक कटु सत्य है कि भारत और पाकिस्तान को लड़ाने में इन देशों के राजनीतिज्ञों का कम किन्तु अमेरिका का रोल कहीं ज्यादा है।

वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के संदर्भ में भारत की अर्थ नीति की चर्चा करना भी यहाँ प्रासंगिक है। आज जिसे नई अर्थनीति कहा जा रहा है यह किसी भारतीय दिमाग की उपज नहीं है। इसके पीछे जो विदेशी हाथ है उसे पहचानना जरूरी है। इस संदर्भ में अक्सर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के एक बड़े हिस्से को अनुशासित कराने वाले गेट समझौते के अन्तर्गत विश्व व्यापार संगठन का नाम लिया जाता है। गेट के अन्तर्गत ही डंकल प्रस्ताव पेश किया गया। यह सभी विश्व संगठन हैं। हमारी नई अर्थनीति इन्हीं विश्व संगठनों की देन है। इन संगठनों के विश्व लक्ष्य क्या है? विश्व संगठनों के विश्व लक्ष्य ही होने चाहिये जैसे– विदेश व्यापार में कमजोर देशों का शोषण न हो, राष्ट्रों के मध्य आर्थिक विषमता कम हो, दुनिया से गरीबी, भुखमरी मिटे। पर हमें समझना होगा कि उन देशों के विश्व लक्ष्य हैं जिनके समर्थन और निर्देश से यह विश्व संगठन चलते हैं?

अतः इस परिवेश में मामला सिर्फ भारतीय लोकतंत्र के भविष्य का ही नहीं है। मामला पूरी आधुनिक सभ्यता और आधुनिक तंत्र का है। यह

तंत्र उपनिवेशबाद के सहारे पैदा हुआ था और उपनिवेशवाद के आधार पर ही जारी रह सकता है। स्पष्ट है कि हम एक बार फिर गुलामी की तरफ बढ़ रहे हैं। हमारा पिछला अनुभव है कि पहले राजनैतिक गुलामी आती है और फिर आर्थिक गुलामी। पर इस बार क्रम उल्टा होगा। पहले आर्थिक गुलामी आयेगी और फिर राजनैतिक गुलामी। आर्थिक गुलामी राजनैतिक गुलामी से भी बदतर होती है।

विदेशी पूंजी से आज तक कोई समृद्ध नहीं हो सका है। आज विदेशी पूँजी को अधिकाधिक सहूलियतें देने की कोशिश की जा रही है। यदि वर्तमान पद्धति जारी रही तो विदेशी कम्पनियाँ देश की सबसे अधिक आरक्षित एवं सरकार प्रदत्त सुविधाभोगी कम्पनियाँ हो जायेगी। महाराष्ट्र की विद्युत परियोजना इसका ज्वलंत उदाहरण है।

तमाम मतभेदों के बावजूद अमेरिका विश्व मानचित्र में भारत की सशक्त उपस्थिति को स्वीकार कराने को मजबूर है। आई0ए0एन0एस0 के अनुसार अमेरिकी राष्ट्रपति विल क्लिंटन अपनी नई नीति के अन्तर्गत भारत के साथ सजह और सामान्य ऐसे सम्बन्ध बनाना चाहते हैं जो स्थाई हो। अमेरिकी विदेश विभाग के वरिष्ठ अधिकारी ने कहा कि अमेरिका और भारत सहित दक्षिण एशिया एवं अन्य देशों के हित कई क्षेत्रों में एक जैसे हैं। इसलिये अमेरिका इन देशों के साथ ठोस सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक है ताकि विवादित मुद्दों पर भी शान्ति पूर्ण तरीके से बातचीत हो सके।

दक्षिणी एशियायी मामलों से सम्बन्धित अमेरिकी विदेश राज्य मंत्री सुश्री राबिन राफेल के साथ–साथ डेमोक्रेटिव पार्टी के फ्रेक पलोन और रिपब्लिक पार्टी के विल मैकलम ने स्वीकारा है कि दक्षिण एशिया में भारत के सहयोग के बगैर शान्ति और प्रगति सम्भव नहीं है। भारत और अमेरिक मिल कर काम करें तो एशिया को एक नई दिशा दे सकते है। भारत और अमेरिका में सामरिक विषयों और पाकिस्तान के विषयों में मतभेद है फिर भी उनमें घनिष्ठ आर्थिक सहयोग है जो उत्तरोत्तर विकसित हो रहा है। अमेरिका भारत का सबसे बड़ा भागीदार और पूंजी निवेशक देश है। भारत

एशिया की महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभर रहा है। एशियाई देशों के साथ इसके सम्बन्ध घनिष्ठ हो रहे हैं। भारत की उपेक्षा करके एशिया में कोई अपना हित सम्बर्धन नहीं कर सकता।

भारत और यूरोपियन यूनियन के बीच कई देशों को लेकर विचार विमर्श चल रहा हैं आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओ0ई0सी0डी0) ने भारत के सम्बन्ध में रूचि जाहिर की है। यह बीस देशों का संगठन है जिसमें सात बड़े औद्योगिक देश (जी–7) भी शामिल हैं। ये देश मानते है कि भारत एक गतिमान अर्थव्यवस्था है जिसके साथ नीतिगत मामलों पर विचार विमर्श किया जाना चाहिये।

आस्ट्रेलिया की नजरों में अमेरिका, रूस, चीन और जापान के साथ–साथ भारत प्रमुख क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उभर रहा है। आस्ट्रेलियाई सरकार द्वारा संसद में विदेश व्यापार नीति पर रख गये श्वेत पत्र में यह बात कहीं गई है। श्वेत पत्र के मुताबिक अगले 15 साल में अमेरिका, चीन और जापान जैसी प्रमुख शक्तियाँ और दूरगामी दृष्टि से उभरती शक्ति भारत एशिया प्रशान्त क्षेत्र को प्रमुख रूप से प्रभावित करेंगे। दक्षिण एशिया क्षेत्र में भारत आज एक ऐसा देश है जो सशक्त आर्थिक और सामरिक शक्ति के रूप में उभर रहा है। इस दृष्टि से अगले 15 वर्ष काफी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि भारत का आर्थिक विकास दक्षिण एवं मध्य एशिया के आर्थिक विकास के लिये एक उत्प्रेरक तत्व का कार्य करेगा।

भारत का अपने पड़ौसी देशों से आर्थिक रूप से जुड़ना साथ ही तीसरी दुनिया के विकासशील देशों से सम्पर्क बनाये रखना काफी फायदेमन्द है। भारत ऐसा कर भी रहा है। आर्थिक रूप से सशक्त भारत का अपने पड़ौसी देशों से मधुर सम्बन्ध भारत को मजबूत करता है जो भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली के स्थायित्व को दर्शाता है।

मारीशस में 5 से 7 मार्च 1997 को हुये एक सम्मेलन में हिन्द–महासागर तटीय क्षेत्रीय सहयोग संध (हिमत्क्षेस) की स्थापना हुई। सम्मेलन में भारत के अलावा आस्ट्रेलिया, इन्डोनेशिया, कैन्या, मेड़ागास्कर,

मलेशिया, मारीशस, मौजाम्बीक, ओमान, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका, तंजानिया और यमन ने हिस्सा लिया। सात देशों–बंगला देश, ईरान, पाकिस्तान, सेशेल्स, थाईलैन्ड, मिश्र और फ्रान्स सहित अनेक देशों ने भी इसकी सदस्यता में रूचि दिखाई है। इन सभी देशों ने क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग में भारत की भूमिका और उसके सहयोग को स्वीकारा है।

जून 97 के पहले सप्ताह में भारत, बंगला देश, श्रीलंका तथा थाईलेन्ड ने एक उपक्षेत्रीय सहयोग दल गठित कराने की घोषणा करते हुये कहा कि इससे आशियान के साथ विचार–विमर्श तथा दक्षेस (SARC) को मजबूत बनाने के भी सार्थक प्रयास हो सकेंगे।

इस दिशा में माले में सम्पन्न दक्षेस (SARC) का शिखर सम्मेलन काफी महत्वपूर्ण है। सभी सदस्य सहमत थे कि इस उपमहादीप के देशों की समस्यायें एक जैसी है। इसका एक प्रमुख कारण आर्थिक पिछड़ापन है। इसलिये निश्चय किया कि आर्थिक एवं व्यापारिक क्षेत्र में आपसी सहयोग बढ़ाया जाये। इस सम्मेलन में सभी देशों ने सद्भावना और आपसी सहयोग का प्रदर्शन किया।

पड़ोसी राष्ट्रों के साथ मधुर सम्बन्ध रखना भारतीय विदेश नीति का स्थायी तत्व है। सरकारें बदलने पर भी इस नीति में फर्क नहीं पड़ता। भारत की इस भावना को समझनें वाली सरकारें जब पड़ौसी देशों में बनी तब रिश्तों को सामान्य बनाने में देरी नहीं लगी। बंगलादेश इसका उदाहरण है।

विश्वस्तरीय राजनीति में अनेक अवसर ऐसे भी आये हैं जब भारत ने दबावों की चुनौती स्वीकार करके दृढ़ता का परिचय दिया है। जैसे कुछ वर्ष पूर्व अमेरिकी दबाव में रूस द्वारा क्रायोजेनिक इंजन की तकनीक के हस्तान्तरण से इन्कार करने पर भारत ने कहा था कि निजी स्त्रोतों से इस तकनीक का विकास कर लिया जायेगा। इधर कुछ मसले ऐसे भी आये हैं जब भारत ने अकेले ही विश्वमंच पर अमेरिकी दबाव का डटकर मुकाबला किया है। सी0टी0बी0टी0 पर हस्ताक्षर करने के तार्किक इन्कार से उत्पन्न दृढ़ता ने पड़ौसी और छोटे राष्ट्रों में विश्वास की भावना उत्पन्न की है। इस

संदर्भ में निर्गुट राष्ट्रों के सशक्त संगठन में भारत की भूमिका महत्वपूर्ण है। भारतीय लोकतंत्र को ऊर्जा भी तो यही से मिलती है।

पेटेन्ट कानून और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मनमानी रोकने की दिशा में भी भारत के प्रयास सराहनीय है। हल्दी का पेटेन्ट रद्द करवाकर इस दिशा में पहल की गई है तो दूसरी तरफ मारूति उद्योग लिमिटेड के प्रबन्ध निदेशक पर नियुक्ति के सम्बन्ध में जापानी कम्पनी सुजुकी मोटर्स की मनमानी पर रोक ही नहीं बल्कि आयात सौदों में घपले की जाँच की संभावना भी भारतीय लोकतंत्र की मजबूती का परिचायक है।

इस प्रकार विश्व मानचित्र पर भारत एक सशक्त एवं गतिमान अर्थव्यवस्था के रूप में उभर रहा है। प्रत्येक पूंजीवादी और विकसित देश भारत में पूँजी निवेश करना चाहता है। पूँजी निवेश की पहली शर्त होती है पूँजी की सुरक्षा जो राजनैतिक स्थिरता में ही सम्भव है। भारत में लोकतांत्रिक पद्धति पर आधारित राजनैतिक स्थायित्व है। निश्चय ही पूँजीवादी देश जो भारत में अपना पूँजी निवेश कर रहे हैं इस राजनैतिक स्थायित्व को और मजबूत बनाना चाहेंगे क्योंकि यह उनकी मजबूरी है। अमेरिका का भारत के प्रति बदलता नजरिया सिर्फ इसी कारण है। राजशाही और सामन्तशाही की समाप्ति से उपजा पूँजीवाद अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये राजनैतिक स्थायित्व चाहता है। यह पूँजीवाद लोकतंत्र को जीवित रखेगा।

भारत में लोकतंत्र का बाह्य रूप काफी सुदृढ़ है। चुनाव आयोग सक्रिय है। शान्तिपूर्वक चुनाव होते है। शान्तिपूर्वक सत्ता का हस्तान्तरण हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने मताधिकार का प्रयोग करने को स्वतंत्र है। किन्तु इधर लोकतंत्र का आन्तरिक रूप विकृत हो चला है। नौकरशाही का राजनीतिकरण और राजनीति का अपराधीकरण इसी विकृति की उपज है। आतंकवाद चाहे व कश्मीर में हो या आसाम में, क्षेत्रीय, जातीय या साम्प्रदायिक तनाव, माफियाराज, ददुआ या वीरप्पन सबकी जड़ में है सामन्तवादी मनोवृत्ति। इसी मनोवृत्ति के कारण होता है नौकरशाही का राजनीतिकरण और राजनीति का अपराधीकरण। भारतीय लोकतंत्र को यदि खतरा है तो यहीं से।

पर इन सबके बावजूद भारत का निरक्षर जनमानस इतना शिक्षित जरूर है कि वह लोकतंत्र के महत्व को जानता है। यदि लोकतंत्र मजबूत होता है तो आदर्श राज्य की कल्पना की जा सकती है। जिसकी अंतिम परिणिति राजविहीन समाज की परिकल्पना पर समाप्त होती है। तमाम अर्न्तविरोधो के बावजूद भी भारत की आम जनता में राष्ट्रीय भावनायें है। सामरिंक और आर्थिक रूप से सशक्त भारत में लोकतंत्र का भविष्य उज्जवल है। विश्व को नया नेतृत्व दे सकने की क्षमता भारत में है।

lfo/kku dh /kkjk 356 dh vko';drk

(8–10 नवम्बर 1998 नैनीताल)

संवैधानिक व्यवस्था को बरकरार रखने के लिये संविधान में तीन असाधारण आपात परिस्थितियों का उल्लेख है। जिसके अन्तर्गत संविधान, केन्द्रीय शासन को विशेष अधिकार प्रदान करता है–

अनुच्छेद 355 :– युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण आपात, इसे राष्ट्रीय आपात भी कह सकते हैं।

अनुच्छेद 356 :– राज्य के संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर केन्द्र राज्य के विधान मंडल को निलम्बित कर सकता है। इसे राष्ट्रपति शासन कहते हैं।

अनुच्छेद 357 :– भारत या किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय स्थायित्व संकट में होने पर वित्तीय आपात की घोषणा की जा सकती है।

संविधान में अनुच्छेद 356 की आवश्यकता की बहस का स्त्रोत वर्तमान में बिहार प्रान्त है। राज्यपाल द्वारा की गयी बिहार में राष्ट्रपति शासन की अनुशंसा के आधार पर केन्द्रीय सरकार की सलाह, राष्ट्रपति द्वारा कुछ बिन्दुओं के आधार पर वापस कर दी गयी। इसी के साथ अनुच्छेद 356 की सार्थकता पर राष्ट्रव्यापी बहस प्रारम्भ हो गयी है। अनुच्छेद 356 की आवश्यकता की व्याख्या करने के पूर्व यह जानना जरूरी है कि संविधान का मूल ढ़ांचा और अनुच्छेद 356 की पृष्ठभूमि क्या है।

संविधान जीवन्त कौमों को शासित करने हेतु तैयार किया गया एक जीवन्त दस्तावेज है। जिसे बदली हुई सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालते रहने के लिये संशोधन की आवश्यकता होती है। भारत के संविधान में भी समयानुकूल संशोधन करते रहने का प्राविधान है। किन्तु संविधान के मूलभूत ढ़ांचे में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। केशवानन्द भारती मुकदमें में बहुमत का निर्णय देने वाले न्यायाधीशों में मुख्य न्यायाधिपति सहित न्यायमूर्ति

शैलेट तथा न्यायमूर्ति ग्रोवर का कहना था कि संविधान के मूल ढ़ांचे की कोई सर्वमान्य सूची नहीं बनाई जा सकती। किन्तु फिर भी उन्होंने इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जो निम्नलिखित है–

1. संविधान की सार्वेच्चता।
2. सरकार की गणतंत्रीय व्यवस्था।
3. राष्ट्र की संप्रभुता।
4. संविधान का संघीय एवं पंथनिरपेक्ष स्वरूप।
5. कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका के बीच शक्तियों का बटवारा।
6. भाग चार में वर्णित समाज कल्याणकारी राज्य बनाने का संकल्प, तथा
7. भारत की एकता और अखंडता।

उपर्युक्त सभी संविधान के मूलभूत ढ़ांचे के उदाहरण हैं। बाद के निर्णयों में मूलभूत ढ़ांचे के उदाहरणों में कुछ और वृद्धि हुई, जैसे इंदिरा गांधी बनाम राजनारायण मामले में मत व्यक्त किया गया था कि संविधान का प्रजातांत्रिक ढ़ांचा तथा इस व्यवस्था का अभिन्न हिस्सा, निष्पक्ष तथा स्वतंत्र चुनाव संविधान का मूल ढ़ांचा है।

देश की आजादी के साथ ही हुये विभाजन और हिन्दु–मुस्लिम आबादी की अदला–बदली के कारण मची अफरा–तफरी से उपजी असुरक्षा की भावना की देन है, संविधान का अनुच्छेद 356। देश की तत्कालीन हालातों से सहमे नेहरू और पटेल प्रान्तों की स्वायत्त अधिकार देने के खिलाफ हो गये। उन्होंने प्रान्तों के आर्थिक व औद्योगिक विकास को भी केन्द्र के नियंत्रण में रखने का फैसला लिया। इसके अतिरिक्त देश की एकता बनाये रखने की नीयत के तहत भारत सरकार अधिनियम 1935 के अनुच्छेद 93 को बरकरार रखा गया। जिसके तहत यह प्रावधान था कि (1) केन्द्र सरकार राज्य के मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है और (2) संवैधानिक मशीनरी ठीक से काम न करने की हालत

में उसका शासन भी अपने हाथ में ले सकती है। यही अनुच्छेद 93 हमारे संविधान की धारा 356 है। जिसके अन्तर्गत केन्द्र प्रान्तीय सरकार को बर्खास्त करके अपना शासन अर्थात राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है।

संविधान सभा में अनुच्छेद 356 को रखने के सवाल पर हुई बहस में आमतौर पर राय थी कि आजाद भारत के संविधान में ऐसा प्राविधान नहीं होना चाहिये। इसके बावजूद इस धारा को संविधान में इसलिये बनाये रखा गया ताकि उपयुक्त अवसर पर देश को विभाजन जैसी स्थितियों से बचाया जा सके। संविधान में यह प्राविधान भी किया गया है कि धारा 356 का प्रयोग करने के पहले राज्य सरकार को धारा 256–257 के तहत चेतावनी निर्देश दिये जाने चाहिये जिससे राज्य सरकार को अपना प्रशासन सुधारने का एक अवसर प्राप्त हो सके और साथ ही संघ की विधायी एवं प्रशासनिक कार्यवाही का सम्यक अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके। ऐसे अनुदेशों का पालन करने से इंकार करने पर अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य सरकार को अपदस्थ करने की शक्ति संघ सरकार को प्राप्त है। राज्य, राष्ट्र का एक हिस्सा है। अतः राज्य सरकार का संविधान के अनुसार चलाया जाना केन्द्र सराकर की जिम्मेदारी है। जो अनुच्छेद 355 में वर्णित है– ''संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह बाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य की रक्षा करे और प्रत्येक राज्य सरकार का इन संविधानिक उपबन्धों के अनुसार चलाया जाना सुनिश्चित करें।'' इस परिप्रेक्ष्य में अनुच्छेद 356 को संविधान में बनाये रखने के बावजूद डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि यह अनुच्छेद देश के संघीय स्वरूप को बरकरार रखने का अंतिम उपाय है। उन्होंने बार–बार इस बात का उलल्ेख किया कि इस अनुच्छेद का इस्तेमाल लगभग अपवाद की ही तरह होना चाहिये, जब कोई चारा न बचे। अम्बेडकर लिखते हैं कि ''हम यह आशा करते हैं कि इस अनुच्छेद के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होगी और यह पुस्तक में ही बना रहेगा।

यदि इस अनुच्छेद को कभी लागू किया भी जाता है तो मैं आशा करता हूं कि राष्ट्रपति किसी राज्य के प्रशासन को निलम्बित करने के पहले सभी उचित सावधानी बरतेगी।'' सरकारिया आयोग एवं बोम्मई के मामले में भी यह सुनिश्चित करने के लिये कहा गया है कि सांविधानिक तंत्र विफल हो जाने पर ही अनुच्छेद 356 का इस्तेमाल किया जाना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि अनुच्छेद 356 का इस्तेमाल करने के पूर्व संविधान में वर्णित अन्य धाराओं का प्रयोग किया जाना चाहिये ताकि शायद इस धारा को लागू करने की नौबत ही न आ सके। डॉ0 अम्बेडकर जिनकी राय को महत्व देकर अनुच्छेद 356 को संविधान में रखने की बात मान ली गयी थी, उम्मीद व्यक्त की थी कि यह ''डेड लेटर'' साबित होगी, यानि इसका शायद ही कभी इस्तेमाल होगा।

संविधान के अनुच्छेद 356 की क्या उपयोगिता है इसकी विवेचनात्मक मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में पत्रकार, राजनेता एवं विधि विशेषज्ञों के विचार प्रस्तुत हैं –

पत्रकार विमल चन्द्र चौरसिया ने अपने एक आलेख में लिखा है कि– सन् 1956 में केरल में ई0एम0एस0 नम्बूदरीपाद के नेतृत्व में बनी कम्युनिस्ट सरकार एवं 1970 में बंगाल की संविद सरकार जिसमें मा0क0पा0 का बाहुल्य था। इन दोनों ही अवसरों पर कम्युनिस्टों की अवधारणा थी कि भारत में क्रांति करके कम्युनिज्म को स्थापित करने हेतु सरकार में सम्मिलित होने के अवसर का पूरा–पूरा उपयोग किया जाये। फलस्वरूप उन्होंने ऐसी कार्यशैली को अपनाया जो असंवैधानिक थी। पुलिस प्रशासन कम्युनिस्टों की किसी गैरकानूनी गतिविधियों के प्रति पूर्ण निष्क्रिय था। पुलिस प्रशासन की निष्क्रियता से हालात इतने दयनीय हो गये थे कि तत्कालीन मुख्यमंत्री को स्वयं अनिश्चित कालीन अनशन करना पड़ा था।

आज की भा0क0पा0 एवं मा0क0पा0 की कार्यशैली तब से पूर्ण भिन्न होकर लोकतंत्र समर्थक हो गयी, तो यह सिर्फ अनुच्छेद 356 की ही देन है। उन्होंने समझ लिया है कि संविधान के अन्तर्गत बनने वाली

सरकार में सम्मिलित होकर संविधान विरोधी कार्य नहीं किया जा सकता है।

भा0क0पा0 एवं मा0क0पा0 की बदली हुई कार्यशैली से क्षुब्ध कट्टरपंथी कम्युनिस्टों ने कानू सान्याल एवं चारू मजूमदार के नेतृत्व में अलग होकर नक्सलवाड़ी आन्दोलन की शुरूआत की। किन्तु आज इनका भी एक बड़ा गुट मा0क0पा0 (मा0ले0) के रूप में संविधान के अन्तर्गत चुनाव प्रक्रिया में भाग लेकर अपनी कार्यशैली बदल चुका है।''

पत्रकार राजीव चतुर्वेदी कहते हैं कि– ''पाकिस्तानी गुप्तचर संस्था आई0एस0आई0 के सहयोग, समर्थन और उकसावे के अन्तर्गत पंजाब तथा जम्मू एवं कश्मीर में आतंकवाद का बाहुल्य हो गया था। तब अनुच्छेद 356 का उपयोग करके ही वहां के आतंकवाद पर काबू किया जा सका था। अगर अनुच्छेद 356 संविधान में न होता तो भारत को भयंकर स्थिति का सामना करना पड़ता।

सन् 1992 में बाबरी मस्जिद प्रकरण में कल्याण सिंह ने उ0प्र0 के मुख्यमंत्री की हैसियत से सर्वोच्च न्यायालय में शपथ पत्र दाखिल कर बाबरी मस्जिद की सुरक्षा का वादा किया था, पर किया इसके विपरीत। इसलिये उनकी सरकार को निलम्बित करके उ0प्र0 में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया था। साथ ही म0प्र0, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान की भाजपा सरकारें भी गिराकर इन प्रान्तों में भी राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया था। क्योंकि इन प्रान्तों की सरकारों पर रामजन्म भूमि के मामले में सक्रिय भूमिका निभाने और कार सेवकों को सुविधा एवं संरक्षण देने का आरोप था।

संविधान के अनुच्छेद 356 की जबरदस्त पैरवी करते हुए अन्नाद्रमुक की सुश्री जयललिता ने कहा कि ''इस अनुच्छेद को समाप्त कर दिये जाने से देश में अराजकता फैल जायेगी तथा राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे में पड़ जायेगी। राज्य सरकारें बेलगाम हो जायेंगी और वे राष्ट्रीय हित के खिलाफ कोई भी कदम उठा सकती हैं। जब भी किसी राज्य में कानून व्यवस्था की स्थिति काबू से बाहर हो जाये और राज्य सरकार

केन्द्र के निर्णयों और उच्चतम न्यायालय के निर्देशों का उल्लंघन करने लगे तो अनुच्छेद 356 का प्रयोग लाजमी हो जाता है। किसी प्रान्तीय सरकार की साठ–गांठ से उग्रपंथी बाहरी शक्तियों की घुसपैठ हो तब भी अनुच्छेद 356 का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

भारतीय विधि संस्थान द्वारा दिल्ली में आयोजित परिचर्चा में भी धारा 356 को आवश्यक बतलाया गया और कहा गया कि यही एक व्यवस्था है जो राज्यों को 'बन्दूक से मत' की ओर ले जा सकती है। इसलिये धारा 356 को समाप्त करने का सवाल ही नहीं उठता।

माकपा नेता चतुरानन मिश्र, न्यायमूर्ति बी0एम0 तारकुण्डे सहित तमाम जागरूक व्यक्तियों ने कहा है कि 'संघवाद' भारतीय संविधान की आत्मा है। अतः अनुच्छेद 356 को संविधान में बनाये रखना भी नितान्त आवश्यक है।

और सबसे अंत में, इसी संदर्भ में एक प्रश्न, जब प्रान्तीय सरकार संविधान के अनुरूप न चले तो केन्द्र सरकार संविधान की सुरक्षा करेगी। पर जब केन्द्र सरकार भी संविधान के अनुरूप न चले तब क्या होगा ?

LFkk;h ljdkj vkj Hkkjrh; lfo/kku

(2–4 नवम्बर 1999 नैनीताल)

इस देश में स्थाई सरकार के बारे में विचार विमर्श होता रहा है। स्थाई सरकार के लिये जरूरी है कि लोकसभा में दलबदल कानून में परिवर्तन हो, दल बदल कानून में विधायकों और सांसदों को महत्व दिया जाये।

परस्पर वार्तालाप में मधुलिमये ने हरिविष्णु कामत से पूंछा– ''आपकी नजर में सबसे अच्छी लोकसभा कौन सी थी।'' उन्होनें उत्तर दिया–तीसरी। तीसरी लोकसभा जनता की तीव्र रूचि का केन्द्र बनी। इसके पहले या बाद में जनता ने कभी भी संसद की कार्यवाही में इतनी रूचि नहीं ली। पहली दो लोकसभाओं पर जवाहर लाल नेहरू का करिश्मायी व्यक्तित्व छाया रहा। जिन विशेषताओं ने तीसरी लोकसभा को स्मरणीय बनाया वे थी–

(1) विपक्षी दलों में अधिकाधिक समन्वय और सदन में विपक्ष में फूट डालने वाले मुद्दों से बचने की सजगता।

(2) लोकसभा में दिन व दिन जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिये सरकार पर एकमत से केन्द्रित हमला। सरकार को बच निकलने के लिये मौका ही नहीं दिया जाता था।

(3) विपक्ष ने कई मंत्रियों को त्याग पत्र देने पर मजबूर किया जैसे– कृष्णामेनन, केशवदेव मालवीय और टी.टी. कृष्णामचारी।

वकील, पत्रकार, शिक्षाविद् और लेखक जो पहली दो लोकसभाओं में बड़ी तादाद में थे, उनकी संख्या घटती गयी। 1971 के चुनाव में मिले दो तिहाई बहुमत और सर्वसत्ता वादी प्रधानमंत्री के कारण संवैधानिक समीकरण उलट गया। राष्ट्रपति रबड़ की मुहर बन गये। मुख्यमंत्रियों को चुनने की राज्यों की स्वतंत्रता खत्म की गयी। मंत्रिमण्डल ने सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर काम करना बन्द कर दिया और

पार्टी का आन्तरिक लोकतंत्र ध्वस्त हो गया। व्यापक भ्रष्टाचार, सरकारी प्रक्रियाओं का दुरूपयोग धनबल, और फिर बाहुबल का उदय आदि ने भारी नुकसान किया। निर्णायक तंत्र के केन्द्रीयकरण और प्रतिबद्ध नौकरशाही ने सरकार को अधिकाधिक गैर जिम्मेदार बना दिया।

1947 से आपातकाल तक लगातार 30 वर्ष तक एक दल की स्थायी सरकार रही। इसके बावजूद राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक आदि प्रत्येक क्षेत्र में स्थायी एवं दीर्घकालीन नीतिगत दिशाहीनता एवं स्पष्टता के अभाव में मंहगाई बढ़ी, साम्प्रदायिक एवं जातिगत संघर्षों को बढ़ावा मिला बेरोजगारी बढ़ी और चँहुओर भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। विपक्ष निस्तेज और बेजान साबित हुआ। स्थाई सरकार का यह सुफल था। नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं लोकसभा के दौरान अल्पमत सरकारें रहीं। ये दो तिहाई बहुमत वाली पूर्व की सरकारों की तुलना में और भी कम संवेदनशील और गैर जबाबदेह रहीं। और अब हमारे सामने वह लोकसभा है जिसका कार्यकाल 2012 में प्रारम्भ होना था। किन्तु अस्थिरता के दौर ने 13 वर्ष पूर्व ही तेरहवी लोकसभा को हमारे सामने ला दिया। संविधान के अनुसार संसद के प्रति उत्तरदायी शासन की व्यवस्था है। परन्तु संविधान में लोकसभा के पाँच वर्ष के कार्यकाल के स्थायित्व की कोई व्यवस्था नहीं है। नौवी लोकसभा का कार्यकाल 1 वर्ष 6 माह रहा। ग्यारहवी और बारहवीं लोकसभा भी अल्पअवधि में ही भंग करनी पड गयी थी। तो क्या प्रत्येक एक या दो वर्ष पश्चात सदैव चुनाव होते रहेंगे और अस्थिर लोकसभा ही उत्तरदायित्व सभाँलती रहेगी।

स्थायी लोकसभा और स्थायी सरकार के अभाव में भारत की वर्तमान समस्याएं जैसे जनसंख्या विस्फोट, नवयुवकों में बेकारी और निराशा, भयानक आर्थिक संकट, अलगाववादी एवं आतंकवादी शक्तियों की चुनौती, इन सबके ऊपर बैठा भ्रष्टाचार इन सबके निदान के लिए किसी राजनैतिक दल या व्यक्ति द्वारा दृढ़ता से निर्णय ले सकना मुश्किल हो गया। स्थिति यह हो गयी है कि राजनेता राष्ट्रहित को पीछे छोड़कर सिर्फ वोट जुटाने

के लक्ष्य से ही कार्य कर रहे हैं। प्रश्न यह है कि इन अस्थिर परिस्थितियों में क्या प्रधानमंत्री या अन्य राजनेता अपने पद की सुरक्षा के लिए चिन्तित नहीं रहेगा? क्या कोई ठोस जनहित के निर्णय लिये जा सकते है? विपक्षीदल वोट प्राप्त करने के लक्ष्य से ही अपना समर्थन और विरोध करते हैं। परिणामस्वरूप समस्याओं का कोई निदान सम्भव ही नहीं है। जबकि यह सभी समस्याएं किसी राजनैतिक दल की न होकर राष्ट्र की समस्याएं हैं। सत्ताधारी व विपक्षी पार्टियाँ विधायिका में या संसद के अन्दर या बाहर सदा संघर्ष और मुकाबले की स्थिति में बनी रहती है। कार्यवाही के दौरान हंगामा और हो–हल्ला आम बात हो गयी है। कभी–कभी तो हिंसा तक की नौबत आ जाती है। प्रत्येक पार्टी, वे ही मुद्दे सामने रखती है जिनसे उसे लाभ होता है। राष्ट्रहित पीछे छूट जाता है।

तीस वर्षों तक एक ही पार्टी की स्थाई सरकार के दौरान पैदा हुई विसगंतियां अस्थाई सरकारों के दौर में और भी ज्यादा फली, फूली और प्रस्फुटित हुई। स्थिति वास्तव में चिन्तनीय है। तो क्या हमारा संविधान गलत था? आज इस अवसर पर अवश्यक है कि हम अपने संविधान निर्माता कुछ मनीषियों को याद करें।

भारतीय संविधान को निष्ठावान तथा उत्कृष्ट योग्यता के मनीषियों ने तैयार किया है। इसकी नींव बहुत ठोस है। इसकी रचना बुद्धि और व्यवस्था से पूरित है। गणतंत्र बनाये जाते है। किन्तु जब बुद्धिमान लोग अपनी ईमानदारी और साहस के कारण लोक परिषदों से बाहर कर दिये जाते हैं बेईमान और चापलूस पुरस्कृत किये जाते हैं। तब गणतंत्र नष्ट हो जाता है। (सच्चिदानन्द सिन्हा) डॉ0 अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से कहा था– ''जिस संविधान को हम भारत के लोगों ने 26 नवम्बर 1949 में आत्मार्पित किया था, वह यदि भविष्य में सफल साबित नहीं होता तो कहना होगा कि संविधान असफल नहीं हुआ है। बल्कि लोग निकृष्ट थे।''

हमारा संविधान इस विश्वास पर रचा गया था कि हमारे श्रेष्ठ नागरिक सार्वजनिक जीवन में भाग लेंगे और निश्चयात्मक भूमिका अदा

करने में सक्रिय रहेंगे। यदि विचारशील और निस्प्रह लोग राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान से अपने को दूर रखेंगे तो निश्चय ही संविधान में विहित जनतांत्रिक व्यवस्था का विकल्प तलाशना ही होगा।

प्रश्न यह है कि पेशेवर राजनीतिज्ञों से प्रभावित व्यवस्था के स्थान पर विशेषज्ञों की व्यवस्था कैसे प्रतिष्ठित की जाये। इस विषय पर राष्ट्रव्यापी गहन विचार विमर्श होना चाहिए। परिस्थिति की विकटता की ओर से आँख मूंद लेना अधिनायकवादी ताकतों को न्यौता देना होगा।

l lnh; i.kkyh vkj vu'kklu

(10–12 सितम्बर 2000 नैनीताल)

छात्र जीवन में हमनें अनुशासन के महत्व पर निबन्ध लिखे थे। गुरू जी ने अनुशासन के महत्व पर कई दफ़ा लम्बे–चौड़े व्याख्यान भी दिये थे। परीक्षाओं में भी यह निबन्ध पूँछा गया था। आज इस संगोष्ठी में एक बार पुनः अनुशासन के महत्व पर परिचर्चा हो रही है। विषय है– ''संसदीय प्रणाली में अनुशासन का महत्व'' सामाजिक व्यवस्था, पारिवारिक व्यवस्था, जीवन के प्रत्येक आयाम में, जरूरत कहाँ नहीं है अनुशासन की।

लोकतंत्र के तीन स्तम्भ हैं– विधायिकाः कार्यपालिका और न्याय पालिका, आज विधायिका में अनुशासन का लोप हो चुका है और प्रतिबद्ध कार्यपालिका की चाह ने स्थानान्तरण को उद्योग बना दिया है। किन्तु आशा की किरण अभी शेष है, क्योंकि न्याय पालिका लोकतंत्र के प्रहरी की भूमिका में आ खड़ी हुयी है।

15 अगस्त 1947 को हम आजाद हुये थे। स्वराजियों ने खुशी में पर्चे बाँटे थे–

आज हथकड़ी टूट गई है।
नीच गुलामी छूट गई है।।
उठो, देश कल्याण, करो सब।
नवयुग का निर्माण करो अब।।

पर अफसोस! समय बीतता गया, स्मृतियां मिटती गयीं। हम समझदार से भी ज्यादा समझदार होते गये और 15 अगस्त सिर्फ छुट्टी का दिन हो गया। 15 अगस्त जैसे–जैसे छुट्टी का दिन होता गया वैसे–वैसे बड़े–बड़े ओहदों पर बैठे लोग घूसखोर होते गये। चोरी करने वालों की सीनाजोरी बढ़ती गई। वह जमाना लोग भूल गये, जब केन्द्रीय सरकार के एक मंत्री को इसलिए त्यागपत्र देना पड़ा था, क्योंकि उसने किसी उद्योग

पति को अपनी पार्टी के एक कार्यकर्ता को कुछ हजार रूपये देने के लिये पत्र लिख दिया था। आज कोई भी मंत्री त्यागपत्र देने के लिये मंत्री नहीं बनता। उसे तो महत्वपूर्ण विभाग चाहिये, अन्यथा समर्थन वापस, सरकार गई पानी में। पर ऐसा नहीं होने दिया जाता।

लेन देन होता है जिससे, हर मुश्किल आसान हो।
नाश न आये पास हमारे, निर्भय हर सरकार हो।।

किसी भी चुनाव में कोई भी पार्टी अपने किसी रचनात्मक कार्य के आधार पर मत प्राप्त नहीं करती। बल्कि मत प्राप्ति का आधार जाति, धर्म, क्षेत्रीयता हो गई है। यही कारण है कि हमारे समाज में विघटनकारी शक्तियों ने तेजी के साथ अपने पैर पसारे हैं। भारतीय जनतन्त्र के लिये यह कोई अच्छी स्थिति नहीं है।

आइये! अपने चुने हुये जनप्रतिनिधियों से भी रू–बरू हो लें। देश की विभ्भिन्न विधान सभाओं में क्या हो रहा है? आईये देखते हैं :–

यह झगड़ा – फसाद कहाँ हो रहा है?
क्या इन को पुलिस पकड़कर ले जायेगी?
ये लोग एक दूसरे पर जूते और माइक क्यों फेंक रहे हैं?
देश का समय और धन बर्वाद क्यों कर रहे हैं?

उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, राजस्थान और दिल्ली भी इस तरह की घटनाओं की प्रत्यक्ष गवाह है। लोकसभा की कार्यवाही के हंगामें और गाली–गलौच के दृश्य दूरदर्शन के माध्यम से पूरे देश–विदेश में देखे गये हैं। हंगामा करने वालों में सभी पार्टियों के विधायक और सांसद किसी से पीछे नहीं रहना चाहते। ऐसा तब है जब हमारे गरीब देश के करोंड़ों रूपये इन विधायी कार्यवाहियों में रोज खर्च होते हैं। विधायक और सांसद कितनी आसानी से मोटी कीमत वसूल कर अपनी निष्ठा बदल लेते हैं? तो भ्रष्टाचार का अन्त कहाँ है? मछली हमेशा सिर से ही सड़नी शुरू होती हैं। भ्रष्टाचार और अनुशासन हीनता की शुरूआत भी शासक वर्ग से होती है। जैसा राजा वैसी प्रजा। यही कारण है राजनैतिक अपराधी और माफिया तंत्र

का ही इस देश पर राज है। क्या यह शर्मनाक नहीं है कि वीरप्पन ने तीन–तीन प्रान्तीय सरकारों के साथ ही केन्द्रीय सत्ता को भी बन्धक बना रखा है। ऐसी हालत में वीरप्पन को आदर्श महाजन नायक मानकर उसकी देहरी पर मांथा टेक कर आर्शीवाद मांगने में क्या हर्ज है? आशा की किरण अभी शेष है। इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय एक बार फिर लोकतंत्र के प्रहरी की भूमिका में है। हमें तय करना होगा देश बड़ा है या एक व्यक्ति, कानूनी व्यवस्थायें बड़ी हैं या एक व्यक्ति। व्यक्तिवादिता, अनुशासन हीनता का स्त्रोत है और लोकतंत्र के लिये खतरा। ऐसे जनप्रतिनिधियों के पास असीम विशेष अधिकार हैं। उच्चतम न्यायालय का निर्णय है कि– ''सदन के भीतर के आचरण की समीक्षा न्यायालय नहीं कर सकता।'' सदन के अध्यक्ष/सभापति अपने विशेष अधिकार का प्रयोग करना नहीं चाहते। इस तरह के विशेषाधिकार अनुशासनहीनता के स्त्रोत हैं जिनसे लोकतंत्र कमजोर होता है।

हमारे देश में राजस्व एवं अन्य अपराधों से सम्बन्धित अनेक कानून हैं, परन्तु ये कानून सिर्फ गरीबों के लिये हैं। देश की व्यवस्था चलाने वाले जन–प्रतिनिधियों के लिये कुछ और ही कानून हैं। तभी तो पूर्व प्रधान मंत्रियों एवं प्रतिरक्षा मंत्री पर बकाया करोड़ों रूपयों की वसूली अधर में लटकी पड़ी है। दूसरी तरफ, भूँख से बेबस, दस रूपये की चोरी करने वाला, सालों से जेल में बन्द, कानूनी प्रक्रिया प्रारम्भ होने के इन्तजार में बूढ़ा हो चला है। क्या हमारे देश में कोई मानवाधिकार आयोग नहीं है? होना तो यह चाहिये कि समाज के जो भी विशिष्ट व्यक्ति हैं, जन प्रतिनिधि या अधिकारी, कानून तोड़ने पर उन्हें सामान्य व्यक्ति से अधिक दण्ड का भागीदार बनाने का प्राविधान होना चाहिए। पर होता क्या है किसी ऐशगाह को ही जेल का नाम देकर कानून का मखौल उड़ाया जाता है।

अनुशासन हीनता के इस माहौल में सम्पूर्ण संसदीय प्रणाली खतरे में है। क्योंकि नैतिक मूल्य मिट गये हैं। ऐसा कोई आईना ही नहीं रहा जिसमें अपनी कुरूप सूरत दिखाई दे सके।

जब भी राज्य लोकाचार तोड़ेगा, वह संविधान की आत्मा को नोंच फेंकता है। राज्य सत्ता से समाज बड़ा है। व्यक्ति की सामाजिक प्रतीति ही हमें यह जानने के लिये मजबूर करती है कि कहाँ, क्या हो रहा है और क्यों? यही जानकारियाँ आदमी को सामाजिक रूप से सचेत करती हैं। राज्य जब संविधानिक जिम्मेदारियों का वास्तव में निर्वाह कर रहा होता है, तब वह अपने सारे कार्यकलापों को समाज के लिये खुला छोड़ देता है। ताकि लोग देख सकें कि कहाँ क्या हो रहा है और क्यों? राज्य की पारदर्शिता लोकतंत्र को मजबूत बनाती है। आम नागरिक को यह अधिकार क्यों दिया जाना चाहिए? इसके निम्नलिखित तीन कारण हैं :–

1. निर्वाचित जन प्रतिनिधियों पर अंकुश लगाने और मतदाता के प्रति जबाबदेह बनाने के लिये।
2. भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के लिये।
3. नीति निर्धारण और क्रियान्वयन में आम जन की भागीदारी के लिये।

संक्षेप में सभी राजनैतिक पार्टियों का चरित्र लगभग समान है। सभी का उद्देश्य मौका परस्ती और कुर्सी की तलाश है। अनुशासनहीनता ने संसदीय लोकतंत्र प्रणाली की नींव को खोखला कर डाला है। ऐसे में मन भावी आशंका से काँप उठता है। न जाने क्या होने वाला है? क्या यह दशा और दिशा कभी बदलेगी? क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि एक और 15 अगस्त की तलाश में गांधी के पुर्नजन्म की बेला पुनः आ पहुँची है? हालात स्पष्ट संकेत दे रहे हैं कि भावी परिवर्तन की आधार–शिला रखी जा चुकी है। दुष्यन्त के शब्दों में. . . . .

कहीं से एक चिंगारी ढूढ़ लाओ दोस्तो।
इस दिये में तेल में भीगी बाती तो है।।

^^vkrdokn vkj ykdrU= e ekuokf/kdkj**

(अप्रैल 2005, वृन्दावन)

विश्व में मूलतः तीन दुर्दान्त आतंकवादी समूह हैं जिन्होंनें दुनियाँ भर में वैचारिक या नस्ल के आधार पर आतंक मचा रखा है।

(1) अलकायदा :– इसे ओसामा बिन लादेन ने सुन्नी आतंकवादियों को एकजुट करने के लिये बनाया। मकसद समस्त विश्व में गैर इस्लामी सरकारों को खत्म करके इस्लामी खिलाफत को कायम करना।

(2) हमास :– यह सभी आतंकवादी फिलीस्तीनियों का वैचारिक संगठन है। यह इजराइल के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता।

(3) एल.टी.टी.ई. (लिट्टे) :– तमिल मुक्त चीतों ने 1983 में श्रीलंका सरकार के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष शुरू किया। फिलहाल यह संगठन समाप्त प्रायः है।

इन समस्त आतंकवादी गिरोहों का आर्थिक स्रोत मादक पदार्थों की तश्करी है। इस कारोबार से इनके पास इतने डालर आ जाते हैं कि हथियारों और विस्फोटकों की तस्करी भी बहुत आसान हो जाती है।

जम्मू काश्मीर का एक आतंकवादी संगठन 'लश्कर–ए–जब्बार', एक अनजाना सा संगठन फरमान जारी करता है कि कश्मीरी महिलायें घर से बाहर बुर्कों में निकलेगी। इसका नतीजा यह होता है कि दुकानदारों ने अपनी दुकान में सजे महिला बुतों तक को बुर्का पहना दिया और कश्मीरी दर्जी इतने व्यस्त हो गये कि बुर्कों की पूर्ति नहीं कर पा रहे थे। वर्तमान में दुनियाँ इस्लामिक कट्टरपन से जूझ रही है। पर सच तो यह है कि ओसामा बिन लादेन कभी अमेरिका की पहली पसंद हुआ करता था। फिलीस्तीन की सारी लड़ाई इजराइल से और उसके आका अमेरिका से है।

''जनता द्वारा जनता के लिए जनता की सरकार'', अब्राहम लिंकन द्वारा परिभाषित लोकतंत्र का यह अर्थ निःसन्देह बहुत आकर्षक है। लोकतंत्र के इस अर्थ में मानवाधिकार अपने सम्पूर्ण रूप में समाहित है। किन्तु अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि लिंकन के देश अमेंरिका ने कभी भी जनतांत्रिक देशों का समर्थन नहीं किया। फिलीस्तीनी द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से अपना देश मांग रहे हैं। अपने देश में ही शरणार्थी हैं। उनके देश की आकांक्षा की पूर्ति अभी भी एक दिवा स्वप्न है। अफगानिस्तार या ईराक में कौन शासन करेगा, कैसे करेगा यह वहाँ की जनता को तय नहीं करना, यह अमेरिका को तय करना है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ, लोकतंत्र एवं मानवाधिकार का सजग प्रहरी हुआ करता था। किन्तु आज संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका के हाथों गिरवी रखा जा चुका है और अपनी प्रासंगिकता खो चुका है। ईराक के रिहायशी इलाकों में क्लस्टर बम गिराना आतंकवाद का घिनौना रूप है। बुश ईराक में लोकतंत्र की बातें करते हैं। लेकिन क्या उन्हें मालूम नहीं है कि अरब के कई देशों में लोकतंत्र नहीं है? क्या अमेरिका एक–एक करके सभी देशों को निशाना बनायेगा। लोकतंत्र मानवाधिकार का पोषक है जबकि आतंकवाद लोकतंत्र का विनाशक। फिर भी क्यों दुनिया आतंक के साये से अभिशप्त है। कृपया दो लाइनों पर गौर कीजिए–

''लहू लुहान सभी कर रहे हैं, सूरज को
किसी को खौफ, यहाँ रात का नहीं है क्या?''

मानवाधिकार का स्पष्ट मतलब है कि मानव को सम्पूर्ण अर्थों में मानव समझा जाये, मानव की गरिमा और प्रतिष्ठा को बनाये रखा जाये। उसको विकास की सभी सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए, जिसमें भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, जीवकोपार्जन के उपाय आदि सभी शामिल हैं। सरकार का दायित्व है कि इसकी पूर्ति हेतु सत्त प्रयत्नशील रहे। जबकि ठीक इसके विपरीत आतंकवादियों का पहला प्रहार मानवाधिकार का हनन ही होता है। क्षण भर में इमारतें ढहा दी जाती हैं। क्षण भर में

अनगिनत लोग, बालक, महिलायें, वृद्ध अपनी जान गवां चुके होते हैं। परिणामतः सामाजिक विघटन और विनाश का तांडव। कभी ड्रेस कोड का आदेश, कभी महिलाओं को नौकरी न करने का फरमान, सिनेमा, संगीत से परहेज जैसे पर्चों का वितरण, जब चाहे तब बाजार बन्दी।

भारत जैसे महान लोकतंत्र की भी चर्चा कर ली जाये। अपने ही देश में शरणार्थी हो चुके कश्मीरी पंडितों की आबाज को कभी किसी भी राजनैतिक दल ने पूर्ण जोरदारी से नहीं उठाया। क्योंकि शायद ऐसा करने से मामला साम्प्रदायिक मान लिया जाता। कभी मुफ्ती मु0 सईद की सरकार ने इस संदर्भ में कश्मीर पंडितों की वापसी की कोशिश की तो 24 कश्मीरी पंडितों का कत्लेआम कर दिया गया। भारत सरकार ने आतंकवादी गतिविधियों से निपटने के लिये 'पोटा' कानून पास किया। पोटा कानून पास होने से लेकर अब तक किसी भी आतंकवादी पर इसका प्रयोग शायद ही किया गया है। किन्तु तमिलनाडु में वाइकों और उ0प्र0 में राजा भैया पर ही पोटा लगाया। जबकि ये व्यक्ति कम से कम देशद्रोही तो नहीं हैं। राजा भैया के समर्थन में उ0प्र0 के सभी दलों ने मूलतः सपा–भाजपा ने आसमान सर से उठा लिया है। निश्चय ही राजा भैया पर पोटा लगाये जाने का समर्थन नहीं किया जाना चाहिये। किन्तु मैं समस्त पोटा विरोधियों से पूंछना चाहूंगा कि मिर्जापुर में सोलह निहत्थे लोग नक्सली के नाम पर मार दिये गये थे और 27 बेगुनाहों पर पोटा लगा दिया गया था। वे कौन थे? तब किसी ने तनिक भी विरोध नहीं किया था। क्यों? शायद वे मनुष्य नहीं गाजर मूली थे। मरना ही उनकी नियति थी''। तब मानवाधिकार कहाँ था? सरकार ही जब आतंकवादी हो जाये तब विचारी जनता क्या करें?

भारत के नक्सली आन्दोलन के कारण में हैं– आर्थिक विषमताएं और दो जातीय एवं दो वर्गीय ध्रुवों के मध्य लोकतांत्रिक संवादों का अभाव। जब हम लोकतंत्र और मानवाधिकार की बात करते हैं तो हमें इस दिशा में भी सजग और जागरूक रहना होगा। हमें चिन्तन करना होगा कि भारत में आर्थिक विषमतायें कैसे दूर हों और जातीय एवं वर्गीय दूरियां कैसे कम की जायें।

लोकतंत्र का ढ़िढोरा पीटने वाला अमेरिका भारत जैसे महान लोकतंत्र को निगल लेना चाहता है। कहा जाता है कि भारत सोने की चिड़िया था किन्तु मेरा कहना है कि भारत आज भी सोने की चिड़िया है। भारत की विशाल जैविक सम्पदा पर अमेरिका की निगाह है तभी तो कभी नीम का पेटेन्ट, आंवला का पेटेन्ट, हल्दी का पेटेन्ट और यहां तक कि आयुर्वेद के पेटेन्ट होने की चर्चा प्रायः होती रहती है। पोखरन–2 के बाद अमेरिकी प्रतिबन्धों का सामना भारत इसलिये कर पाया क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि आधारित है और जिस दिन हमने अपनी कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को तिलांजलि दी उसी दिन अमेरिका वैश्वीकरण की आड़ में हमें निगल जायेगा।

दुनियाँ का सबसे ताकतवर देश अमेरिका जिसे यदि आतंकवाद का जनक माना जाये तो रंच मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिसने पाकिस्तान द्वारा पोषित आतंकवाद को सदैव संरक्षण प्रदान किया है। ओसामा बिन लादेन को अमेरिका पैदा करता है और जब अमेरिका का आदेश नहीं मानता तो आतंकवादी हो जाता है। एक कवि ने कहा है–

दुनिया को आतंकवाद, उस दिन समझ में आया,
जब एक बंदर ने, मदारी को काट खाया।

डंकल प्रस्ताव, विश्व बैंक, वैश्वीकरण, पेटेन्ट कानून ऐसे शतरंजी मुहरे हैं जो सिर्फ अमेरिका के हितों का पोषण और सम्बर्द्धन करते हैं। विश्व की लोकतांत्रिक सरकारों को कमजोर बनाते हैं और आतंकवाद को प्रश्रय देते हैं। वर्तमान में विश्व में दो बड़े लोकतांत्रिक देश हैं अमेरिका और भारत। अमेरिका की निगाह भारत के लोकतंत्र को निगल जाने की है। जब तक अमेरिका की नीति और नीयत साफ नहीं होगी, आतंकवाद फलता फूलता रहेगा और लोकतांत्रिक देशों में मानवाधिकार एक दिवा स्वप्न बनकर रह जायेगा। और अन्त में संतोष झा की एक कविता–

जंग नहीं हमें अमन चाहिये,
जंग खोरों का शमन चाहिये,
तेल की खातिर खून बहाते,
आज ईराक है, कल ईरान है,
परसों है भारत का नम्बर,
अमन के ये दुश्मन हैं,
जालिम और शैतान हैं सारे,
नम्बर वन हैं आतंकवादी,
साम्राज्यवादी, पूंजीवादी,
दुनियाँ भर पे नजर है इनकी,
लालची – मक्कारों जैसी।
जंग नहीं हमें अमन चाहिये,
जंग खोरो का शमन चाहिये।

jktuhfr e vijk/kh dj.k dk c<rk iHkko

(15–17 सितम्बर 2007 सोनभद्र)

यह वर्ष अमर शहीद भगत सिंह जी का जन्म शताब्दी वर्ष है, आज प्रश्न यह है कि हमारे शहीदों ने किस प्रकार की आजादी के लिए कुर्बानियां दी थीं। क्या इसलिए कि आजादी के साठ साल बाद आज हम बहस कर रहे हैं राजनीति के अपराधीकरण पर। अपराधीकरण का प्रभाव इतना बढ़ चुका है, चार लाइनों में कहना चाहूंगा :

खून बोतल में हो किसी का भी
हमने इसको संभाल कर रखा है,
हम व्यापारी हैं सियासत के,
ये तिजारत का माल अच्छा है।

वर्तमान भारतीय राजनीति तथा अपराध परस्पर इतने घुल मिल गए हैं कि इनके मध्य विभाजक रेखा खींचना आसान नहीं है। स्थानीय राजनीति से राष्ट्रीय राजनीति तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपराधी तत्व अपनी मजबूत पकड़ बना चुके हैं। स्थिति कितनी भयावह है इसका अनुमान श्री वी0जी0 कृष्णमूर्ति (पूर्व निर्वाचन आयुक्त) की इस टिप्पणी से लगाया जा सकता है कि 'कानून तोड़ने वाले लोग ही कानून बनाने वाले होते जा रहे हैं'। देश एवं प्रदेश की सर्वोच्च विधायिका एवं शासन तक अपराधी तत्वों की उपस्थिति चौंकाने वाली है। राजनीतिज्ञ – अपराधी गठजोड़ पर 'बोहरा रिपोर्ट' का स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि – ''देश के अपराधी गिरोहों, हथियार बंद सेनाओं, तस्कर गिरोहों, नशीली दवा व्यापारियों का इतना संगठित, विस्तार हो चुका है कि इन्होंने अफसरशाही, सरकार, राजनीतिज्ञों और मीडिया के साथ गठजोड़ बना लिया है। चुनाव लड़ने में होने वाला बेहिसाब व्यय राजनीतिज्ञों को इन तत्वों से गठजोड़ करने हेतु उत्प्रेरित करता है। हरियाणा, उ0प्र0, बिहार जैसे राज्यों का विशेष उल्लेख करते हुए कहा गया

है कि जातीय एवं सामंतवादी राजनीति के माहौल में कुछ राजनीतिज्ञ हथियारबंद सेनाओं या गिरोहों के मुखिया बन जाते हैं और क्षेत्रीय राजनीति पर दबदबा कायम करके विधान सभा एवं संसद तक पहुंचने में सफल होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कों वाले आपराधिक पृष्ठभूमि के यथाकथित राजनीतिज्ञ हवाला और काले धन के जरिए समानान्तर अर्थव्यवस्था ही नहीं चला रहे हैं बल्कि हथियार तस्करी एवं विदेशी खुफिया एजेन्सियों के साथ भी सम्बन्ध में लिप्त हैं।''

ध्यान देने योग्य बात यह है कि अपराधी तत्व न केवल खुले आम सक्रिय हैं बल्कि सफेदपोश रूप में भी। इसमें न केवल हिंसा, तस्करी, हथियार तथा नशीली दवाओं के व्यापार करने वाले सम्मिलित हैं बल्कि वे उद्योगपति, बड़े व्यापारी सटोरिये, पूंजीपति भी सम्मिलित हैं जो राजनीतिज्ञों को धन शक्ति उपलब्ध कराते हैं तथा इसके एवज में अपने तमाम काले व्यापार एवं परियोजनाओं को हरी झण्डी दिलवाते हैं ये पढ़े लिखे पूंजी सम्पन्न एवं तथाकथित अभिजात्य वर्ग के अग्रणी लोग भी राजनीति तथा सरकार को भ्रष्ट करने में उतनी ही या उससे भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जितनी कि राजनीतिज्ञों के लिए कार्य करने वाले स्वयं राजनीतिज्ञ का चोला पहन लेने वाले अपराधी। प्रथम वर्ग धन शक्ति के बल पर आर्थिक एवं सामाजिक अपराधों का संजाल बुनता है तो द्वितीय वर्ग अपने बाहुबल एवं आतंक के बल पर व्यवस्था पर कब्जा करता है।

राजनीति के अपराधीकरण का यह भयावह सच, एक दिन या कुछ दिनों का नहीं, बल्कि स्वतंत्रता पश्चात भारतीय राजनीति में तेजी से बदलती दशा एवं दिशा की उपज है। भारत में लोकतंत्र आज जनता की वास्तविक इच्छा समादेश का द्योतक न होकर एक दुर्भाग्यपूर्ण गिनती का खेल बन गया है। जिसमें सरकार बनाने के लिए अधिकाधिक विधायकों या सांसदों को अपने पक्ष में गिनवाया जाता है। भेड़–बकरियों की तरह सांसदों और विधायकों की खरीद फरोख्त का खेल और कुर्सी की चाहत में सामाजिक सरोकार से संबंधित सभी मूल्य गिरवी रख दिये जाते हैं। इस

प्रवृत्ति को देश की राजनीति के बदलते व्यवहार में ढूंढ़ा जा सकता है। स्वतंत्रता पूर्व जहां राजनीति सामाजिक सेवा का माध्यम थी जिसमें अपने प्राण, परिवार का सुख, आर्थिक सुरक्षा सब कुछ दांव पर लगाना पड़ता था और आजादी के दीवाने, प्रतिबद्ध व्यक्ति ही राजनीति की ओर कदम बढ़ाते थे, अपने निजी सुख या स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि एक महान्तम उद्देश्य ''देश को स्वतंत्र कराने के लिए''। पर आजादी के बाद राजनीति के बदलते परिवेश में राजनीति अब व्यवसाय है, जिसका लक्ष्य है सत्ता की शक्ति, धन और बाहुबल की प्राप्ति। ऐसी स्थिति में किसी भी कीमत पर सफलता की प्राप्ति का परिणाम है राजनीति में अपराधी तत्वों का प्रवेश।

अस्सी के दशक से राजनीति में मतदान से लेकर मतों की गिनती तक प्रत्याशियों को धमकी देनें, हत्या कराने से लेकर जीते हुए प्रत्याशियों को पक्ष में करने के लिए बड़े पैमाने पर अपराधियों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। धीरे–धीरे अपराधियों पर राजनीतिज्ञों की निर्भरता ने न केवल इन अपराधियों के कदों में वृद्धि की बल्कि महत्वाकांक्षा में भी वृद्धि की। बढ़ते हुए संगठित अपराध के बड़े सरगना अब राजनीति में भाड़े के आदमी की भूमिका से संतुष्ट नहीं रहे। इसका परिणाम हुआ अपराधी सरगनाओं का सक्रिय राजनीति में प्रवेश, जो वर्तमान में लगातार जारी है। स्वाभाविक रूप से अपराध की नंगी दुनिया से राजनीति की तथाकथित सफेद दुनिया इन अपराधी सरगनाओं के लिए सुरक्षित, प्रतिष्ठित तथा अधिक संभावनाओं से भरपूर जगह है जहां रहकर वे न केवल अपने अपराधिक क्रियाकलापों को अधिक निर्भीक ढ़ंग से चला पा रहे हैं साथ ही पुलिस, प्रशासन, न्यायपालिका एवं सम्पूर्ण व्यवस्था पर दबदबा कायम रखने में भी सफल हो पा रहे हैं। लेकिन इस प्रक्रिया का सबसे विनाशकारी प्रभाव भारतीय लोकतंत्र को यह हुआ है कि चुनाव में भारी हिंसा एवं व्यय ने आम बुद्धिजीवी, प्रतिबद्ध एवं योग्य व्यक्तियों के लिए राजनीति के दरवाजे बहुत सकरे कर दिए हैं, जिसका परिणाम है भारतीय लोकतंत्र की गुणवत्ता का ह्रास एवं नैतिक पतन।

गठबंधन की राजनीति के बढ़ते मौकों ने भी राजनैतिक मूल्यों एवं मान्यताओं को स्वाहा कर दिया है। समस्त सिद्धांतों एवं स्वस्थ परम्पराओं को तिलांजलि देकर भी सत्ता प्राप्ति हेतु राजनीतिक दल परस्पर गठबंधन बना रहे हैं। गठजोड़ की इस राजनीति में विधायकों या सांसदों का संख्याबल ही मोलभाव करने का मानक होता है। गठजोड़ की इस राजनीति से क्षेत्रीय, साम्प्रदायिक एवं जातीय शक्तियों का भी ध्रुवीकरण हुआ है। क्षेत्रीय राजनीतिक दलों को क्षेत्र विशेष की राजनीति में अपना अस्तित्व बनाए रखने के जातीय एवं साम्प्रदायिक समीकरणों के अनुसार अपना प्रत्याशी खड़ा करना होता है। यह स्थिति अपराधी सरगनाओं को अपनी जाति या सम्प्रदाय का तमगा लगाकर तथाकथित जातीय एवं साम्प्रदायिक हितों के संरक्षक के रूप में सक्रिय राजनीति में उतरने का सुनहरा अवसर देती है। आज उ0प्र0, बिहार जैसे पिछड़े राज्यों से लेकर महाराष्ट्र जैसे विकसित राज्य में भी माफिया सरगना, सफेदपोश नेता, जनता के प्रतिनिधि एवं हित संरक्षक बनकर उभरते रहे हैं।

लेकिन हमें ध्यान रखना होगा कि राजनीति के व्यवसाय के रूप में उदय होने के साथ–साथ न केवल कुख्यात अपराधी सरगनाओं ने इस लाभप्रद व्यवसाय को अपनाया है, बल्कि जनता के मध्य अपने धन एवं बाहुबल एवं राजनीतिक रसूख के बल पर प्रतिष्ठा भी हासिल की है। इनकी सफलता को देखकर समाज का युवावर्ग भी इन्हें आदर्श के रूप में स्वीकारता प्रतीत होता है। यह मात्र दुर्भाग्यपूर्ण ही नहीं बल्कि विनाशकारी तस्वीर है कि बेरोजगारी, अशिक्षा और आरक्षण ने उन्नति के लगातार कम होते जा रहे अवसरों से त्रस्त उर्जावान युवावर्ग राजनीति को एक लाभप्रद व्यवसाय के रूप में देखता है तथा अपराध को सफलता की गारंटी के रूप में। यह प्रवृत्ति राजनीति में अपराध की नई पौध को जन्म दे रही है। दूसरे शब्दों में अपराध का संस्थाकरण हो रहा है जिसका अंतिम लक्ष्य है राजनीति में प्रवेश करके सत्ता, धन एवं शक्ति को अर्जित करना। अपराध, राजनीति में सफल होने की आवश्यक अर्हता बन गया है। परिणाम, भारतीय राजनीति

के अपराधीकरण से सम्पूर्ण भारतीय लोकतंत्र, समाज एवं राष्ट्र की गुणवत्ता एवं भविष्य पर संकट है। कानून तोड़ने वालों को कानून बनाने वालों की भूमिका में पाकर कानून लागू करने की मशीनरी बुरी तरह हतोत्साहित ही नहीं बल्कि ऐसे तत्वों से गठजोड़ करने के लिए उत्प्रेरित करती है। जिसका परिणाम है अपराधी, राजनीतिज्ञ, नौकरशाहों का अपराधिक गठबंधन। भारतीय प्रशासनिक एवं भारतीय पुलिस सेवा जैसी उच्चतम सेवाओं के अधिकारियों में बढ़ता भ्रष्टाचार तथा आपराधिक गठजोड़ सम्पूर्ण सरकारी तन्त्र की एक बानगी मात्र है।

संसदीय राजनीति की साख आज गिरी है। आम आदमी के मन में अपने नेताओं के प्रति आज नफरत है यही वजह है कि आम आदमी पेशेवर राजनीतिज्ञों की बजाय अकादमिक क्षेत्रों में राजनीति में आये लोगों पर ज्यादा भरोसा करने लगा है इसके उत्तम उदाहरण हैं मनमोहन सिंह और कलाम।

अब राजनीतिज्ञ जनता से पूरी तरह कट चुके हैं। इससे पहले कि जनता उन पर भरोसा करना छोड़ती, उन्होंने राजनीति को 'इवेंट मैनेजमेंट' में तब्दील कर दिया। शामियाने लगाने से लेकर भीड़ जुटाने तक के ठेके दिए जाने लगे हैं। नेता मतदाता के मोहताज नहीं रह गए। उन्होंने वोटों के बंदोबस्त का कौशल भी सीख लिया है। यह हाल किसी एक पार्टी के नेताओं का नहीं, कमोवेश सभी पार्टी के नेताओं का हो गया है। भूंडलीकरण के दौर में हमारी संसदीय राजनीति इससे भी आगे के चरण में प्रवेश कर चुकी है। पश्चिम की अवधारणा को स्वीकार करते हुए राजनीति को ही सिरे से अप्रासांगिक करार देने की कोशिश हो रही है। अमेरिका और इंग्लैंड जैसे देशों में, जहां राजसत्ता का कोई विशेष महत्व नहीं है और बाजार ही सारी चीजों का नियंता है, राजनीति भी चिकित्सा या इंजीनियरिंग की तरह एक व्यवसाय बन गई है। उनका किसी विचाराधारा विशेष से कोई खास ताल्लुक नहीं होता है।

किन्तु इतिहास हमें बताता है कि यह राजनीति ही थी जिसकी वजह से देश आजाद हुआ। यह राजनीति ही थी, जिसकी वजह से

अमेरिका में काले लोगों को गुलामी से मुक्ति मिली। यह राजनीति ही थी, जिसकी वजह से मजदूरों के कार्य के घंटे तय हो सके किंतु आज भारत में भी विचाराधारा की राजनीति से राष्ट्रीय दलों ने अपनी दूरी बना ली है तो क्षेत्रीय दलों के बारे में क्या कहा जाय। ऐसे में, इस कड़वी सच्चाई को स्वीकार करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है कि भारत की संसदीय राजनीति एक अंधी गली में प्रवेश कर चुकी है, जहां से आगे का रास्ता या तो तानाशाही की ओर जाता है या फिर अराजकता की ओर। मनमोहन सिंह व अब्दुल कलाम के बाद सियासतदां शायद अमिताभ बच्चन और सचिन तेंदुलकर जैसे लोगो से मनुहार करते दिखे कि आप हमारे मुखिया बन जाइए। स्थिति अराजकता या तानाशाही की ओर बढ़े, इससे पहले लोगों को ही अपनी पहल पर वैकल्पिक नेतृत्व पर गंभीरता से विचार करना होगा।

लेकिन क्या, जनता इसके लिए तैयार है। तैयार नहीं है तो तैयार करना होगा। क्योंकि समस्या का निदान भारतीय जनता एवं मतदाताओं के ही पास है। हमें वही शासन, प्रशासन प्राप्त होता है जिसके हम योग्य हैं। अतः भारतीय मतदाताओं पर यह गंभीर दायित्व है कि वे स्वच्छ, कर्मठ, दूर दृष्टिवान जनप्रतिनिधियों को चुनकर विधान सभाओं या संसद में भेजें। इस जिम्मेदारी का निर्वाह करने के लिए मतदाताओं को जातीय, जनसंख्या नियंत्रण, रोजगार जैसे सकारात्मक मुद्दों पर ही अपने मतों का प्रयोग करना होगा। इस दिशा में जागरूकता लाने के लिए सरकार, स्वयंसेवी संगठन तथा समाज के प्रबुद्ध वर्ग को पहल करनी चाहिए।

संस्थागत सुधारों की बात करें तो कुछ बड़ी कमियां चुनावी प्रक्रिया एवं प्रशासन तंत्र में प्रथम दृष्टया सामने आती है। चुनावों में धनबल की महत्ता कम से कम होने पर पूंजीपतियों एवं अपराधियों पर निर्भरता की स्थिति भी समाप्त हो सकती है। कहा जाता है कि सुधार ऊपर से नीचे चलते हैं। अस्तु सुधारों के लिए राजनीतिक इच्छा शक्ति एवं प्रतिबद्धता भी सरकार के सर्वोच्च स्तर से प्रारम्भ करने की आवश्यकता है। इसमें कुछ विशिष्ट बिन्दुओं पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है।

* सरकारी कार्य में पारदर्शिता एवं दायित्वबोध।
* सूचना का अधिकार।
* लोकपाल जैसी संस्थाओं को प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता।
* त्वरित न्यायिक प्रक्रिया जिससे न्याय मात्र किया ही न जाए बल्कि प्रदर्शित भी हो।
* सरकारी कार्यो को निपटाने की समय सीमा।
* चुनाव खर्च को सीमित किया जाने पर कड़े नियम।
* आपराधिक छवि वाले व्यक्तियों के चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध।
* सभी राजनीतिक पार्टियों में आन्तरिक लोकतंत्र की स्थापना।

बदतर हालत है। आईये हम अपने प्यारे हिन्दुस्तान की आवाज सुनते हैं :

मैं कैसे चुप रहूं, मुझमें करोड़ों लोग बसते हैं।
मेरी हर आवाज, आपके नाम एक पैगाम है।

यह पैगाम इसलिये है, क्योंकि

हो गई है पीर पर्वत से धनी पिघलनी चाहिए।
हिमालय से अब कोई गंगा निकलनी चाहिए।।

इसके लिए क्या करना होगा, सिर्फ, हंगामा नहीं

सिर्फ हंगामा करना, मेरा मकसद नहीं।
मेरी यह कोशिश है कि सूरत बदलनी चाहिए।

और इसके लिए

मेरे दिल में न सही, तो तेरे दिल में ही सही।
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।।

मेरे भारत में करोड़ों लोग बसते हैं। आइये हम सब मिलें, कोशिश करें करते रहें, हम कामयाब होंगे

कैसे आसमान में छेद हो नहीं सकता,
एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारों।।

fuokpu d l e; ehfM;k dh Hkfedk

(10–11 अक्टूबर 2009 अयोध्या)

लोकतंत्र के तीन स्तम्भ है, विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका। ये तीनों संविधान द्वारा संचालित होते है। जबकि पत्रकारिता इनकी निगरानी करता है। आम जनता की आवाज को शासन तक पहुँचाता है। एक मायने में पत्रकारिता लोकतन्त्र का सजग प्रहरी है और साथ ही लोकतंत्र का चौथ स्तम्भ भी। किन्तु खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि लोकतंत्र के इस चौथे स्तम्भ मीडिया मुख्यतः प्रिन्ट मीडिया ने अपने दायित्व से विमुख होकर बाजारवाद को प्रश्रय देने का कार्य प्रारम्भ कर दिया हैं।

लोकतंत्र के चुनाव के समय अखबार की पहली और सबसे बड़ी जिम्मेदारी यह मानी जाती है कि वह अपने पाठकों/ग्राहकों/वोटरों को निष्पक्ष और उचित रूप से सही जानकारी दे। उन्हें अपना ठीक फैसला करने में सभी तरह के अभिमतों से परिचित करायें। किसी भी लोकतंत्र में स्वतंत्र प्रेस की खबरों को पवित्र माना जाता हैं, क्योंकि पाठक उन पर भरोसा करता है और सही व सच्ची खबर के लिये अखबार खरीदता है। पाठक और अखबार के मध्य की यह विश्वसनीयता ही पत्रकारिता का आधार है। लेकिन विगत लोकसभा चुनाव 2009 में यह विश्वास टूटा है। बिना स्वस्थ्य और जीवन्त लोकतंत्र के टिक न सकने वाली स्वतन्त्र प्रेस ने अपनी यह जिम्मेदारी छोड़कर खबरों के वेष में उम्मीदवारों के प्रचार और विज्ञापनों को दो नम्बर का पैसा लेकर छाप दिया। पाठकों को बताया तक नहीं कि ये हमारी खबरें नहीं उम्मीदवार का प्रचार है। इस प्रकार अखबारों ने अपने पाठकों के सूचना पाने के बुनियादी अधिकार को सिर्फ झुठलाया ही नहीं बल्कि लोकतंत्र के प्रति अपनी पहली जिम्मेदारी से भी मुँह मोड़ लिया।

हिन्दी ही नहीं बल्कि देश के हर भाषायी अखबारों ने पैसे लेकर उम्मीदवारों के प्रचार को खबर बनाकर छापा। कहते है कि नेट पर इस सम्बन्ध में काफी चर्चा हुई। सभी अखबारों के नेट संस्करण हैं। लेकिन जिन अखबारों ने यह किया वे बहस से दूर चुप्पी साधे रहे। अखबार अगर लोकतन्त्र में सार्वजनकि बहस के मंच है तो अपने किये धरे पर बहस भी उन्हीं को करना चाहिये नेट पर नहीं।

अतः स्पष्ट है कि खबरों के पैकेज के इस धंधे पर अखबार कोई सार्वजनिक बहस नहीं करना चाहता कि लोकसभा चुनाव में उम्मीदवारों और पार्टियों के प्रचार को खबर बनाकर बेचा। यह खरीद–बिक्री भी काले धन से की गई ताकि न तो उम्मीदवार को उसे अपने चुनाव खर्च में डालना पड़े और न अखबारों को खबर बेचने का कोई हिसाब–किताब रखना पड़े। एक अनुमान के मुताबिक उत्तर प्रदेश के एक अखबार ने विगत लोकसभा चुनाव में दो सौ करोड़ का काला धन बनाया।

भा0ज0पा0 एवं स0पा0 ने हिन्दी के प्रमुख अखबार के एक–एक मालिक को राज्यसभा में भेजा। इस अखबार की इन्हीं हरकतों से परेशान लखनऊ एवं देवरिया के दो प्रमुख उम्मीदवारों ने अपनी खुली जनसभा में पूंछा कि वे बताये कि उनको राज्यसभा में भेजने के लिये पार्टी ने कितने पैसे लिये थे? जो आज हमारी खबरें छापने के पैसे मांग रहे हैं। इन उम्मीदवारों ने अखबार का पैकिज नहीं खरीदा।

अखबारों का काम भ्रष्ट कारनामों की सही खबर लेकर उन्हें रोकना और इस तरह चुनाव आयोग एवं लोकतन्त्र की मद्द करना है। अखबार कोई छापाखाना नहीं है, जो पैसा लेकर जो भी छपवाना चाहे छापते रहें। वे अखबार इसलिये है कि लोकहित में अपने स्वतन्त्र बुद्धि–विवेक का इस्तेमाल करते है।

नई पत्रकारिता व्यवसाय को अपना पहला काम और मुनाफे को पहला प्रयोजन मानती है। जिस तरह उद्योग–व्यापार अपनी सामाजिक जिम्मेदारी निभाने के लिये कुछ धन समाज सुधार में दे देते हैं वैसे ही नई

पत्रकारिता लीड इंडिया, मतदाता जन जागरण, और घूस को घूंसा जैसे अभियान चलाती है। यह काली कमाई करते हुये गंगा में डुबकी लगाना है।

पुरानी पत्रकारिता पत्रकारिता के जरिये लोकहित और लोकसेवा करती थी। इसी को अपना काम मानती थी क्योंकि अखबार गतिविधि नहीं है। यह लोकहित एवं जन आन्दोलन का सशक्त माध्यम भी हैं। यहाँ शुभ–अशुभ और नैतिक–अनैतिक का ध्यान रखना पड़ेगा।

15वीं लोकसभा में 300 करोड़पति निर्वाचित हुये हैं। इसका मतलब यह है कि गरीब–मेहनतकश जनता के लिये इस महान संस्था तक पहुँचना कितना मुश्किल है। प्रभाष जोशी कहते है– ''विगत लोकसभा चुनाव के दौरान मुझे अच्छी तरह समझ में आ गया है कि खबरों के पैकिज के काले धंधे पर सार्वजनिक बहस न होने का एक कारण यह भी है कि नौकरशाहों, पूंजीपतियों और राजनेताओं की मिलीभगत में लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ हमारा मीडिया भी बराबर का सहयोगी और भागीदार हो गया है।

पत्रकारिता के मूल्यों में ऐसे भयावह क्षरण से नुकसान दलित, पिछड़ों की राजनीतिक ताकत वाम आन्दोलनों और प्रतिरोध की शक्तियों को हुआ है, जो इसके प्रगतिशील तबके से नैतिक और वैचारिक समर्थन की उम्मीद करते हैं। मीडिया की इन हरकतों से लोकतांत्रिक शक्तियों को खतरा है। इसलिये इस बहस को आगे भी जारी रखना पड़ेगा।

uDlyokn& leL;k vkj lek/kku

(6, 7 सितम्बर 2011 वृन्दावन)

सौ में सत्तर आदमी, फिलहाल जब नाशाद है,
दिल में रखकर हाथ कहिये, देश क्या आजाद है।
कोठियों से मुल्क की मैयार को मत आंकिये
असली हिन्दुस्तान तो, फुटपाथ पर आवाद है।।

इण्डिया दैट इज भारत, में दो प्रकार के इण्डिया हैं। एक शाइनिंग इण्डिया और दूसरा है सफरिंग भारत। सफरिंग भारत की भी सबसे निम्न सीमा अर्थात 25% जिसका मतलब है 30 करोड़ की आवादी की दैनिक आय 20/– रूपये से भी कम है। इस आवादी का गुजारा कैसे होता है। कभी किसी ने इस ओर सोचना भी मुनासिव नहीं समझा है।

और यही से शुरू होती है नक्सली गाथा। रोटी मिलने की आस में हर रात भूखा सोने वाला आदमी जब यह सच जान जाता है कि – मेरे देश का समाजवाद माल गोदाम में लटकती हुई उन बाल्टियों की तरह है जिस पर लिखा होता है ''आग'' और जिसमें भरा होता है बालू और पानी। तब आम आदमी भूख की लड़ाई लड़ने को तैयार होता है और अपने इस हक को प्राप्त करने के लिये दया की भीख मांगने से अच्छा अपनी ताकत से उसे छीन लेना ज्यादा पसन्द करता है। कवि धूमिल ने लिखा है– एक ही संविधान के नीचे भूख से रिरियाती हुई फैली हथेली का नाम, दया है, और भूख से तनी हुई मुट्ठी का नाम, ''नक्सलवाड़ी'' है।

यह एक आदमी की त्रादसी नहीं हैं, बल्कि सारे आम आदमी, सारे समाज और सारे देश की त्रासदी है। यह कथा वहाँ से शुरू होती है, जब तमाम जद्दोजहद के बाद, वर्षो की लड़ाइयाँ और संघर्ष के बाद, सैकड़ों–हजारों जाँबाज देश भक्तों के बलिदानों के बाद, जब हमारा देश आजाद हुआ। उस आजादी के बाद हमें जो खुशी हुई, हमने जो सपने देखे, हमारी जो

उम्मीदें थी कि– ''अब कोई बच्चा भूखा रहकर स्कूल नहीं आयेगा। अब कोई छत बारिश में नहीं टपकेगी। अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में नंगा नहीं घूमेगा। अब कोई दवा के अभाव में घुट–घुट कर नहीं मरेगा। अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा। अब कोई किसी को नंगा नहीं करेगा। अब यह जमीन अपनी है। आसमान अपना है।'' मगर आजादी के बाद वो सारे सपने, वो सारी उम्मीदें, वो सारे बायदे खोखले लगने लगे। ''देश आम आदमी का है, आम आदमी के लिये है'' का नारा छलावा लगने लगा। जनता की उम्मीदों के साथ धोखा हुआ। अंग्रेजों के जाने के बाद चन्द अंग्रेजीदाँ लोग स्वतंत्र भारत में नई गुलामी के बीज बोने लगे। आम आदमी जनतंत्र को बहुलतंत्र में परिणत होते निस्सहाय देखता रहा। गरीबों, असहायों का यह देश, चन्द पूंजीपतियों, सियासतदारों, भ्रष्ट अधिकारियों के हाथों की कठपुतली बनकर रह गया। उनकी कार्यशैली और नीतियों में जनता की भूख और उसके समाधान की कोई योजना नहीं थी। तमाम पंच वर्षीय योजनायें चल रही हैं, मगर हम तक क्यों नहीं पहुँच रही हैं।

यहाँ तक आते–आते सूख जाती है, कई नदियाँ
हमें मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।

संसद में इन सारे सबालों का जबाव देने वाला कोई नहीं है। दर असल– ''अपने यहां की संसद तेल की ऐसी धानी है, जिसमें आधा तेल, और आधा पानी है, नेताओं में बहसे होती हैं, शब्दों के जंगल में एक दूसरे को काटते है, भाषा की खाई को जुबान से कम, जूतों से ज्यादा पाटते है। जनता.....एक भेंड़ है जो दूसरों की ठंड के लिये, अपनी पीठ पर, ऊन की फसल ढ़ो रही है।''

इसी कारण यहाँ के गोदामों में अनाज भरे पड़े हैं और लोग भूखों मर रहे है। लेकिन सरकार उन्हें गरीबों को मुफ्त नहीं बाँट रही है। देश के सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों को भी बड़े शर्मनाक ढ़ंग से यह सियासत के लोग दरकिनार कर देते हैं। समाज और सियासतदारों की ऐसी अमानवीयता पर हमारा देश रो उठता है और कहता है कि– ''इस दलदल से हमें बाहर

निकालों, तुमचाहे जिसे चुनो, मगर इस व्यवस्था को बदलो।

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कँवल के फूल कुंभलाने लगे हैं।

वह कहता है कि – आज मैं तुम्हे वह सत्य बतलाता हूँ, जिसके आगे हर सच्चाई छोटी हैं, इस दुनियाँ में, भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क रोटी है और यह रोटी नक्सलवादियों का सबसे बड़ा तर्क है। जिसकी जिम्मेदार है भूख और भूख की जिम्मेदार है सियासत की गलत नीतियाँ। अपनी इस रोटी को पाने के लिये गरीब आदमी अब किसी के आगे हाथ फैलाने को तैयार नहीं, बल्कि अपने हिस्से की रोटी छीन लेना चाहता है। नक्सलवाद की आग का धुआँ यही से उठना शुरू होता है।

ब्रिटिश कालीन भारत में शोषण के खिलाफ आदिवासी विद्रोह करते रहें हैं जिनमें प्रसिद्ध विद्रोह है– गंगा नारायण हंगामा, 1832, भूमिज कोल विद्रोह 1832, सन्थाल आन्दोलन 1857–58, काचा नागा विद्रोह 1880, सरदार लड़ाई विद्रोह 1885, वीरसा मुण्डा विद्रोह 1895–1900, मुण्डा समुदाय ने 20 वर्षीय इस युवा को भगवान माना। भारत सरकार ने भी इस वीर युवा को सम्मान देते हुये राँची में वीरसा मुण्डा विश्वविद्यालय की स्थापना की। आजाद भारत में भी पण्डित जवाहर लाल नेहरू के काल में प्रवीन सिंह भंजदेव के नेतृत्व में बस्तर आन्दोलन तो अभी हाल की बात हैं।

सन् 1948–51 में तेलंगाना का किसान आन्दोलन जिसमें करीब 4000 किसान मारे गये थे, अपनी सुप्तावस्था के बाद पुनः एक वार फिर 1967 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिला स्थित ग्राम नक्सलवाड़ी से साम्यवादी आन्दोलन के रूप में प्रारम्भ होता है, जो आज 14 राज्यों के 2500 से अधिक थानों में फैल चुका हैं अथवा ऐसा भी कह सकते है कि भारत के 626 जिलों में से 231 जिले इस आन्दोलन की गिरफ्त में हैं। अपनी रोटी के लिये उठा हुआ हाथ, आज लगभग 20000 सशस्त्र लड़ाकों तथा लाखों समर्थकों के साथ खड़ा है। खास बात यह है कि इसे भारत सहित दुनियाँ के तमाम बुद्धिजीवियों का समर्थन प्राप्त है। क्रान्तिदूत

'चेग्वेरा' एक डाक्टर थे। क्यूबा के फिदेल कास्त्रों के पिता देश के अत्यन्त सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। भारत में भी नक्सलवाद के जनक चारू मजूमदार जमींदार परिवार के थे। वर्तमान में गिरफ्तार कोबाड़ घंड़ी (Kobad Ghandi) दून स्कूल शिक्षित एवं लन्दन से चार्टर्ड एकाउन्टेन्सी में प्रशिक्षित हैं। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त समाजसेवी एवं बाल चिकित्सक डा0 विनायक सेन जिन्हें धारा 124–ए के अन्तर्गत राजद्रोह का दोषी करार दिया है। जिसके तहत सरकार के खिलाफ 'घृणा फैलाना, अवमानना करना और असंतोष पैदा करना राजद्रोह है। याद रखिये ब्रिटिश भारत की सन् 1870 की इसी धारा के तहत अंग्रेजों ने लम्बे समय तक बाल गंगाधर तिलक को कैद रखा था। प्रसिद्ध वकील प्रशान्त भूषण, राम जेठमलानी, उच्चतम न्यायालय के पूर्व प्रधान न्यायाधीश जस्टिस अहमदी, जस्टिस बी0एन0 खरे, प्रसिद्ध समाज विज्ञानी शिव विश्वनाथन, नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन जैसी शख्शियतों ने डा0 विनायक सेन को विश्व नागरिक का दर्जा देकर उनके संघर्ष को सराहा है। छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय में इस मुकदमें की पैरवी देखने के लिये यू0एन0 एवं यूरोपीय संघ के प्रतिनिधि मण्डल को भारत सरकार एवं न्यायालय ने विशेष अनुमति प्रदान की थी।

My dear, Comrades, छमा करें मैंने आपको कामरेड कहा, बड़ा खतरनाक शब्द है ये। साक्ष्य न मिलने की हताशा में पुलिस ने डॉ0 सेन के घर से बरामद माओवादियों की चिट्टी में उन्हें 'कामरेड' सम्बोधित किये जाने पर कहा कि– कामरेड उसी को कहा जाता है जो माओवादी हो। कभी गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर ने कबीर की पंक्ति– 'निसिदिन खेलत रही सखियन संग' का अनुवाद किया था – ''Day and night, I played with my comrades'' हमें इन्तजार है कि कामरेड शब्द के इस्तेमाल पर गुरुदेव पर कब मुकद्दमा चलेगा। प्रसन्नता की बात है कि उच्चतम न्यायालय ने विनायक सेन को जमानत दी और कहा कि देशद्रोह कानून की समीक्षा की जानी चाहिये, यह कानून पुराना हो चुका है।

आदिवासियों के इस संघर्ष में भारत के विभिन्न क्षेत्रों और भाषाओं

में कार्यरत् जन नाट्यमंच, जन संस्कृति मंच, भारतीय जन नाट्य संघ, जनवादी लेखक संघ, प्रगतिशील लेखक संघ से सम्बन्धित तमाम रंगकर्मी, संस्कृति कर्मी, कवि लेखक, साहित्यकार, तमाम फिल्मी हस्तियाँ अपने लेखन एवं सिनेमा द्वारा इस संघर्ष को समर्थन देती रही है। मुक्तिबोध, नार्गाजुन, त्रिलोचन, धूमिल, भोजपुरी, लोककवि गोरख पाण्डेय, आदि विभिन्न, साहित्यकार एवं समाजसेवियों ने नक्सलवाद को समर्थन दिया है। बंगाल की ख्याति प्राप्त साहित्यकार, महाश्वेता देवी, पंजाबी कवि, स्व0 पाश, सहित भारत की प्रत्येक भाषा में नक्सली साहित्य ने अपनी गहरी पैठ बनाई है।

जो लोग माओवाद के बसूली तंत्र का सालाना कारोबार कुछ हजार करोड़ को बताते हैं वे भूल जाते हैं कि इसी देश में सिर्फ 45 मिनट में 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला होता है। जिसकी कीमत अलग–अलग एजेन्सियाँ 22000 करोड़ से 1.76 लाख करोड़ तक बताती है, जो बताते हैं कि माओंवादियों में अपराधी तत्वों की घुसपैठ है वे भूल जाते हैं कि इस देश की संसद में सौ से ज्यादा ऐसे लोग बैठे हुये हैं जिनके कुर्ते पर किसी न किसी संगीन आरोप के दाग हैं। कारपोरेट घरानों का सरकार चलाने में कितना हस्तक्षेप हैं, राड़िया टेप प्रकरण से इसका भी खुलासा हो चुका है। लोकतंत्र को दर असल असली खतरा इन्हीं लोगों से है, माओवादियों से नहीं, या कम से कम उन गरीबों से नहीं, जिन्हें यह व्यवस्था माओंवादी बताकर पकड़ती, पीटती और कभी–कभी मार डालती है।

लोकतांत्रिक सरकार और मानवाधिकार में विश्वास और भरोसा किसी भी प्रकार की हिंसा को गलत मानता है। माओंवादियों की हिंसा को भी क्यों इससे समाधान का कोई रास्ता नहीं खुलता। लेकिन इस प्रकार की माओवादी हिंसा के मुकाबले राज्य की विराट और सूक्ष्म हिंसा कहीं ज्यादा डरावनी है। इस हिंसा के बहुत सारे चेहरे हैं – घनघोर उपेक्षा और आपराधिक छल से लेकर पुलिस दमन तक के। इस हिंसा का चरित्र एक है – वह मूलतः जन विरोधी और गरीब विरोधी है। यह गरीब किसी भी तरह उसके सामने आये, वह पिटता ही है। वह कानून के सहारे भोपाल की

लड़ाई लड़ता है तो छला जाता है। वह दंतेबाड़ा में बन्दूक उठाता है तो मारा जाता है, और दिल्ली में बैठा कोई आदमी अगर उसके हक में सबाल उठाता है तो उसे ''फेलो ट्रेवलर'' करार दिया जाता है। क्या इसलिये कि कोई इस व्यवस्था पर सवाल न उठाये?

नक्सल विद्रोही मुख्यतः आदिवासी बहुत क्षेत्रों में ही ताकतवर बन कर उभरे हैं। भारत का नक्शा देखे तो पता चलेगा कि जो जिले वन सम्पदा के लिये जाने जाते हैं। जहाँ हमारी प्यास बुझाने वाली नदियों और जल धाराओं का आदि स्रोत है। जहाँ लौह अयस्क, कोयला, बाक्साइट की खरबों डालर की सम्पदा जमीन में दबी पड़ी है। ये तीनों सम्पदाऐं जिन इलाकों में एक साथ अस्तित्व में है इसी इलाके में देश के सबसे गरीब लोग रहते हैं। ये वही जिले है जहाँ नक्सलवादी घूमते है। इन इलाकों के लोग अपनी जीविका हेतु इसी जल, जंगल, जमीन पर निर्भर हैं। वे जानते हैं कि एक बार ये संसाधन चले गये तो उनके जीवित रहने का आधार ही चला जायेगा। यही नक्सल समस्या का आदि स्रोत है। अब आप बतायें। **क्या फर्क है? – ''खाड़ी के तेल पर नजर गड़ाए अमेरिका और ब्रिटेन के ईराक पर हमले और आदिवासियों के असन्तोष को दबाने हेतु जल, जंगल, जमीन पर कब्जे के लिये माओवाद के नाम पर सैन्य, अर्द्धसैन्य बलों के इस्तेमाल में।''** बस्तर क्षेत्र में सलवा जुडुम के नाम पर 644 से अधिक गावों को नेस्तनाबूद कर लाखों लोगों को उनके घरों से बेघर किया गया है। इन खनिज सम्पदाओं पर दुनियाँ के सबसे बड़े खनन निगम, कारपोरेट घराने अपनी आँखे लगाये हैं। उड़ीसा के नियमगिरि में बाक्साइट का खनन करने वाली मल्टीनेशनल 'बेदान्ता' से हमारे सियासतदारों के रिश्तों का क्या आपको पता है? हमें मांग करनी चाहिये कि इन इलाकों की परियोजनाओं के समझौते सार्वजनिक किये जाये। कारपोरेट खनन व प्राकृतिक संसाधनों के निजीकरण पर तत्काल रोक लगई जाये।

विकास के नाम पर पेड़ों का काटा जाना बेहद चिन्ताजनक है। अकेले बंगलुरू शहर में पिछले कुछ वर्षों के दौरान विकास के लिये 49000

पेड़ों को काट डाला गया। पुणे के खेद और मावाल तालुका में संरक्षित वन को बरबाद कर दिया गया। आन्ध्रालेक विंड पाबर प्रोजेक्ट ने जिसे ईडो जर्मन इण्टरप्राइजेज इनरकोन इंडिया द्वारा प्रमोट किया जा रहा है 13 मीटर चौड़ी 20 किमी0 लम्बी सड़क बनाने के लिये तीन लाख से ज्यादा पेड़ों को काट दिया गया जब कि अनुमति केवल 26000 पेड़ों को काटने की मिली थी। इस संदर्भ में पर्यावरण विशेषज्ञों का कथन गौर करने लायक है– ''सही मायने में देश की आर्थिक विकास दर के साथ ही आर्थिक विकास के कारण पर्यावरण के नुकसान की गणना की जाय तो वर्तमान समय में आर्थिक विकास के आंकड़े शून्य स्तर पर ही होगें।''

अगर सरकार वास्तव में आदिवासियों और जंगलवासियों तक पहुँचना चाहती है तो वह अपने बनाये वनाधिकार कानून–2006 और लोगों के स्व–शासन और सम्पदा स्रोत पर अधिकारों का सम्मान क्यों नहीं करती? देश भर का आदिवासी समुदाय जिन बातों के लिये प्रतिरोध संघर्ष में उतरता जा रहा हैं वे है –

1. वन–अधिकार कानून–2006, के समस्त प्राविधानों और इसके अन्तर्गत ग्राम सभा के अधिकारों को सम्पूर्ण रूप से लागू करना।
2. वन–अधिकार कानून–2006, के अन्तर्गत लोगों के अपने वन सम्पदा स्रोतों पर अधिकार और नियंत्रण को स्वीकार करना।
3. 'संयुक्त वन प्रबन्धन' और इसके अन्तर्गत बनाये गये 'परिसंघों' को जो वन विभाग के लिये लूट के और घपले बाजी का साधन हैं, समाप्त किये जायें।
4. वन क्षेत्र की तमाम परियोजनाओं– विकास, औद्योगिक, वानिकी आदि को समुदाय और उनके द्वारा तैयार की गई योजना के अनुसार ही लागू किया जाये।
5. सलवा–जुडुम समाप्त कर, पुलिसिया दमन पर रोक लगाई जाये। उच्चतम न्यायालय ने सलवा–जुडुम को समाप्त करने का आदेश पारित किया है।

अन्त में दो प्रश्न – एक आदमी, रोटी बेलता है, दूसरा आदमी, रोटी खाता है, एक तीसरा आदमी भी हैं, जो न रोटी बेलता है, न खाता हैं, वह सिर्फ रोटी से खेलता है, यह तीसरा आदमी कौन है? बहुत खतरनाक है यह आदमी।

दूसरा प्रश्न है – फटा सुथन्ना पहने, हरिचरना जिनके गुण गाता है, जन, गण, मन, अधिनायक में, कौन भारत भाग्य विधाता है? यह भारत भाग्य विधाता कौन है?

इन दोनों प्रश्नों का उत्तर नक्सल समस्या सहित भारत की तमाम समस्याओं का समाधान है। अन्यथा की स्थिति में – तन पर लंगोटी नहीं, पेट में दाना नहीं, हमारे पास हैं ही क्या, खोने को कुछ भी नहीं, पाने को सारी दुनियाँ है। इसीलिये ये मुट्ठी तनी है, तनी रहेगी, इंकलाब होने तक। 'पाश' ने आगाह किया है।

''सबसे खतरनाक होता है,
मुर्दा शान्ति से भर जाना
न होना तड़प का, सब सहन कर जाना
सबसे खतरनाक होता है
हमारे सपनों का मर जाना''

सन्दर्भ

प्रणयकृष्ण : लोकतंत्र को उम्र कैद, समकालीन जनमत, जनवरी 2011, पृष्ठ 13–17

अरुंधति : आदिवासियों से सीखना चाहिये सभ्य लोगों को, समकालीन जनमत, दिसम्बर 2009, पृष्ठ 4–5

शंकर गोपाल कृष्णन : वनाधिकार कानून और सरकार, समकालीन जनमत, दिसम्बर 2009 पृष्ठ 6–7

प्रभात कुमार राय : नक्सल रणनीति के बन्धक, दैनिक अमर उजाला, कानपुर, दिनांक 03.03.11 पृष्ठ 12

कुमार विजय : पर्यावरण की कीमत पर विकास नहीं, दैनिक अमर उजाला, कानपुर दिनांक 07.03.11 पृष्ठ 12

रोमा : जमीन पर महिलाओं की हिस्सेदारी, दैनिक अमर उजाला, कानपुर दिनांक 08.03.11 पृष्ठ 12

सुनीता नारायण : वेदान्ता परियोजना : पर्यावरण कानून तोड़ने का प्रयास, दैनिक आज, कानपुर 10.02.2011, पृष्ठ 6

गोरख पाण्डेय : नक्सलवादी का किसान विद्रोह और साहित्य, जनमत, 26 (3), पृष्ठ 33–38

सुदामा पाण्डेय धूमिल : पटकथा : संसद से सड़क तक, पृष्ठ 40, 114

प्रियदर्शन : जो मलकान गिरि और कंधार को जोड़ते हैं। तहलका, वर्ष 2, अंक 5, 15 मार्च, पृष्ठ 37

ykdr= e ;ok vk dh Hkfe dk

(23–24 नवम्बर 2013 वृन्दावन)

लोकतंत्र में पहला शब्द है **''लोक''** और दूसरा है **''तंत्र''**। अतः पहले लोक पर चर्चा करते हैं। सुदूर ग्रामीण अंचल से लेकर कस्वा, नगर, महानगर, जंगलों, पहाड़ों तथा नदी, सागर किनारे रहने वाले आम आदमी से बनता है ''लोक''। विभिन्न प्रकार के साधनों से अपनी जीविका, उपार्जित करने वाले मेहनतकश स्त्री–पुरूषों के भागीरथ श्रम से, कृषि से लेकर भव्य इमारतें, कारखानें, बिजली, सड़कें, रेलगाडियाँ या कहें सभी प्रकार की विकास योजनाओं का संचालन होता है। इसके साथ ही यही लोक, सीधा, सरल और सहज लोक अपने रीति–रिवाज, परम्पराओं, धार्मिक आस्थाओं को सहेज कर परस्पर सौहार्द से रहकर शान्त एवं संतुष्ट रहने का आदी है। लोक–कला एवं संस्कृति को संरक्षित करने वाला लोक भारत के विभिन्न अंचलों की सांस्कृतिक गतिविधियों एवं परम्पराओं को समृद्ध भी करता है।

लोक के बाद ''तंत्र'' की बात करते हैं। लोक की बेहतरी, प्रगति एवं विकास के लिये ''तंत्र'' उत्तरदायी होता है। तंत्र के संचालन के लिये संविधान में न्याय पालिका, विधायिका एवं कार्य पालिका की व्यवस्था है। यह तीनों लोक के प्रति जिम्मेदार हैं। इन तीनों पर निगरानी के लिये लोक ने पत्रकारिता का गठन किया है।

वर्तमान की बात करें तो यह निर्विवाद है कि संविधान से परे जाकर विधायिका असीमित अधिकार एवं सुविधायें प्राप्त कर लोक के प्रति उदासीन होकर निरंकुश हो चली है। सामान्य जनता को पीने का स्वच्छ पानी भी उपलब्ध नहीं है। राजनैतिक दल रैलियाँ तो निकाल रहे है पर मकसद है मन्दिर–मस्जिद के रास्ते पटना, लखनऊ, दिल्ली की गद्दी। धर्म और जाति के नाम पर ''लोक'' को भयंकर यंत्रणा दी गई है, उसे बांटा गया है।

कार्यपालिका को बंधक बनाकर कर्तव्य परायण युवा अधिकारियों

को दण्डित किया जाता है। वर्तमान में विधायिका–कार्यपालिका गठजोड़ नें सम्पूर्ण तंत्र को प्रदूषित कर दिया है। इकोनोमिस्ट इंटेलीजेंस यूनिट द्वारा जारी 2011 के लोकतंत्र सूचकांक में हमारे देश को 39वाँ स्थान मिला है। कुल 7.30 स्कोर के साथ भारत में पूर्ण लोकतंत्र नहीं है, यह दोषपूर्ण लोकतंत्र वाला देश है। भारत में राजनीतिक भागीदारी, सरकारी कार्यप्रणाली और राजनीतिक संस्कृति की दशा बेहद खराब है। भारत की राजनीति एक अंधेरी सुरंग में प्रवेश कर चुकी है। क्योंकि कोई भी राजनैतिक दल सी0बी0आई0 की आजादी, लोकपाल बिल, आर्थिक स्रोत की सूचना का दायरा, दागियों से परहेज और Right to Reject के पक्ष में नहीं है। इस स्थिति में न्याय पालिका की सक्रिय सजगता लोकतंत्र की मजबूती की दिशा में सार्थक कदम है। पत्रकारिता की भूमिका भी सिर्फ संतोषप्रद कही जा सकती है। निष्पक्ष और निर्भीक पत्रकारिता का अभाव है।

वर्तमान में भारत दुनियाँ का सर्वाधिक युवादेश कहा जाता है, जिसकी औसत उम्र लगभग 26 वर्ष है तथा 2020 तक औसत उम्रे 29 वर्ष होने वाली है। इस देश में मनमोहन सिंह सरकार के मंत्रियों की औसत उम्र 67 वर्ष थी। वर्तमान मोदी मंत्रिमण्डल में जो युवा चेहरे हैं भी उनकी महत्वपूर्ण सार्थक भूमिका अभी उजागर होनी हैं।

युवा मतदाताओं को विभिन्न सरकारी प्रलोभनों एवं अनुदानों से दिग्भ्रमित करने का काम बदस्तूर जारी है। युवाओं के लिये रोजगार परक योजनाओं पर कोई सार्थक कार्यक्रम नहीं है। यह स्थिति अत्यन्त शोचनीच तो है ही लोकतंत्र के लिये गम्भीर खतरा भी।

सन् 2003 में स्वीकृत राष्ट्रीय युवा नीति में युवा के अन्तर्गत 13 से 35 वर्ष के आयु विस्तार को शामिल किया गया है। लेकिन 'युवाजन' केवल आयु का ही मामला नहीं हैं, आशा और विश्वास की मानसिकता का भी है। दर असल 'युवा' कोई उम्र नहीं होती, युवा एक भाव है, एक जज्बा है। इसी के बल पर युवा कुछ नया कर पाता है। सिस्टम का हिस्सा बनता है। उसमें कमी से बैचेन हो उठता है। उसे बदल देना चाहता है या उसे सुधारने की

कोशिश करता है। उम्र से युवा–पन का कोई लेना देना नहीं है। यही कारण है सम्पूर्ण क्रान्ति के नाम से आन्दोलनरत जय प्रकाश नारायण और उनके युवा साथियों के आक्रोश ने भारत में भूचाल ला दिया था। जिसकी परिणति था आपातकाल। आज भी असंतोष, विवाद का ही वातावरण है हर तरफ। इसी का परिणाम था, अन्ना का आन्दोलन। भारत के प्रत्येक शहर का युवा अन्ना आन्दोलन का हिस्सा बना था, पर देश के प्रत्येक राजनीतिक दल ने उसे कोसा था। काश! वरिष्ठ पीढ़ी आगे आकर कुछ बेहतर विकल्पों के सपने दे पाती। अन्ना आन्दोलन से उपजी, आम आदमी पार्टी युवाओं का दल है साफ सुथरी राजनीति के साथ। सिर्फ 18 करोड़ रुपये के बल पर सशक्त चुनौती। यह युवाओं की ताकत है। 16 दिसम्बर 1912, दिल्ली का बस बलात्कार काण्ड/निर्भया काण्ड से आक्रोशित एवं विचलित युवा, नेतृत्वहीन किन्तु अनुशासित, युवा आन्दोलन जिसने सम्पूर्ण भारतीय जनमानस को उद्देलित किया। सरकार मजबूर हुई सशक्त कानून बनाने के लिये। नई सोच और हौंसलों की उड़ान वाला युवा ही नये विकल्प दे सकता है और इस सोच का विकास आज के युवाओं में हो रहा है। सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन लोकतंत्र को मजबूती देते हैं और राजनीति के आगे मशाल बनाकर उसे रास्ता दिखाते है। यह मशाल आज युवाओं के पास है।

f'k{kk dk egRo

(11–12 दिसम्बर 2014 वृन्दावन)

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की जन्मजाति प्रवृत्तियों का विकास, उसके ज्ञान, कला–कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन तथा परिष्कार किया जाता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति को सभ्य, सुसंकृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। यह कार्य मनुष्य के जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्युपर्यन्त चलता रहता है। अपने वास्तविक अर्थ में शिक्षा समाज में सतत् चलने वाली सीखने–सिखाने की सप्रयोजन सामाजिक प्रक्रिया है।

शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत विद्वानों ने शिक्षा को द्विध्रुवी प्रक्रिया माना है एक शिक्षक और दूसरा छात्र। कुछ विद्वानों ने त्रिध्रुवी प्रक्रिया मानकर इसमें पाठ्यक्रम को भी शामिल किया है। आधुनिक परिवेश हो या भावी परिवेश, शिक्षा, शिक्षक, छात्र और पाठ्यक्रम के मध्य अन्तःप्रक्रियात्मक प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक का अपना सुनिश्चित किन्तु महत्वपूर्ण स्थान है।

शिक्षक बालक के लिये आदर्श होता है। जिस प्रकार बालक परिवार में माता–पिता से तादात्म्य स्थापित करता है उसी प्रकार स्कूल में शिक्षक से। अतः शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभावशाली होना आवश्यक है। शिक्षक कैसा होना चाहिये, इसके लिये निम्न वृत्तांत गौर करने लायक है।

शिक्षा न देने के बावजूद द्रोणाचार्य जब एकलव्य से अंगूठा मांगता है तो सारी मर्यादायें धूल–धूसरित हो जाती है। भरे दरबार में अपनी ही शिष्यों द्वारा द्रोपदी का चीर हरण देखते रहने की मजबूरी क्या हो सकती है ? क्या सिर्फ आजीविका ? राजकीय वैभव की आकाँक्षा ने निर्भयता छीन ली। सत्य बोलने की सामर्थ्य हर ली। ऐसे ही द्रोणाचार्य हर युग में महाभारत का कारण बनते हैं। स्वयं को ही नहीं बल्कि समाज को भी भस्म कर देते हैं। जबकि त्यागी, तपस्वी, अध्यवसायी, जाग्रत एवं राष्ट्रीय चेतना

से ओत–प्रोत चाणक्य नवीन समाज एवं राष्ट्र का निर्माण करता है। अतः आज के परिवेशन में हमें आचार्य द्रोण नहीं आचार्य चाणक्य चाहिए।

छात्र को क्या पढ़ाया जाय इस संदर्भ में अब्राहम लिंकन ने अध्यापक को एक पत्र लिखकर आग्रह किया था कि मेरे पुत्र को बतायें–

* जीवन में श्रम का क्या महत्व है? श्रम से मिला एक रूपया बिना श्रम के मिले पाँच रूपये से ज्यादा कीमती है।
* ईर्ष्या से दूर कैसे रहा जाता है ?
* अनुत्तीर्ण होना सम्मान जनक है, धोखा देने के बजाए।
* मेरे पुत्र को ऐसा मनोबल देना कि वो भीड़ का अनुसरण न करें। यदि वह सत्य है तो उसे अपने विचारों में दृढ़ता रखना सिखाना।
* सज्जन के साथ सज्जनता और कठोर के साथ कठोरता का व्यवहार करें।
* दुख में कैसे हंसा जाता है सिखाना उसे।
* मृदुभाषियों से सावधान रहना भी सिखाना।
* अधीर होने का साहस उत्पन्न करना ओर बहादुर होने का धैर्य भी।
* उसे सिखाना कि वह सदैव अपने आप में उदात्त आस्था रखे क्योंकि तभी वह मनुष्य जाति में उदात्त आस्था रख पायेगा।

ये सब आदमीयत के लक्षण भी है। आज के परिवेश की शिक्षा में आदमी खो गया है। अपनी इज्जत आबरू दांव पर लगाकर तिजोरियाँ भर लेता है। देश को और समाज को अंगूठा दिखाकर परमात्मा तो बन जाता है, पर आदमी नहीं बन पाता। आदमी बन जाने के बाद, बालक इंजीनियर बने, डाक्टर, व्यापारी, शासक, प्रशासक कुछ भी बने, समाज और देश आगे बढ़ेगा। आज के परिवेश में ऐसे ही शिक्षक व शिक्षा की आवश्यकता है।

lekt esa efgykvksa dh Hkfedk

(22–23 जुलाई 2015 वृन्दावन)

वैदिक काल में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे– सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और धार्मिक। तमाम वैदिक ऋचाओं की रचना में भी अपाला, गार्गी, मैत्रेयी आदि का नाम लिया जाता है। सत्यकाम–जावाल के कथानक से स्पष्ट है कि वैदिक समाज में अविवाहित माँ को स्वीकृति प्राप्त थी। वौद्ध काल में महिलायें धर्म प्रचारक के रूप में विदेश गई थीं इसका उल्लेख इतिहास में है। कालान्तर में महिलाओं को घर की चहारदीवारी में बन्द कर दिया गया। चूल्हा चौका और बच्चे पैदा करना यही सीमा तय कर दी गई। सदियों बीत गई। समय के अंधकार में महिला खो गई। विधवा होना या सती होना यही प्रारब्ध था। पाण्डुरंग बामन काणे ने ''धर्म शास्त्र का इतिहास'' में स्त्रियों के प्रति सामाजिक दुर्व्यवहार के कारणों का जिक्र किया है–

1. पुत्रों की अत्यधिक धार्मिक महत्ता
2. बाल विवाह और उसके फलस्वरूप स्त्रियों की अशिक्षा
3. शूद्रों के समान अपवित्र मानने की प्रथा
4. पुरुषों पर पूर्ण आश्रितता।

19वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय (1774–1833), ईश्वरचन्द्र विधासागर (1820–1871), दयानन्द सरस्वती (1827–1883), केशवचन्द्र सेन (1838–1884) के प्रयासों से और उसके बाद महात्मा गांधी और आजादी के आन्दोलनों के माध्यम से 20वीं शताब्दी में महिलाओं के सामाजिक और शैक्षिक उन्नयन के लिये सार्थक प्रयास हुये। आजादी के बाद पं0 जवाहर लाल नेहरू ने अपने समकालीन साथियों के विरोध के बावजूद हिन्दू कोड बिल को टुकड़ों–टुकड़ों में पास करवा कर महिला अस्मिता के विकास को एक नया आयाम दिया। नेहरू का यह प्रयास

महिला विकास के सन्दर्भ में मील का पत्थर सावित हुआ।

आज का परिदृश्य उत्साहवर्धक है। सम्पत्ति का अधिकार, तलाक, विधवा, विवाह मान्य हो चुके हैं। बाल विवाह बन्द हैं, किन्तु खेद है कि आज भी राजस्थान में अक्षय तृतीया के दिन बाल–विवाह धूम धाम से होते हैं, समाज के दिग्गज उसमें शरीक होते हैं। कानून आँख बन्द कर लेता है। अपनी हैसियत और हस्ती बताने के लिये औरत को अभी बहुत सारे बन्धनों से आजादी पानी है। कुमारी–श्रीमती जैसे शब्दों से, बिन्दी, सिन्दूर, करवाचौथ, अहोई आढ़े, जेबर, साज–श्रृंगार जैसी पुरूषवादी और सामन्ती बेड़ियों से आजादी और इनको बढ़ावा देने वाली गृहशोभा, बनिता जैसी पत्रिकाओं से जिनके पहले कबर पृष्ठ से अन्तिम कबर पृष्ठ तक के सौन्दर्य बोधक विज्ञापनों से भी आजादी। वैचारिक सौन्दर्य ही तो जज्वा पैदा करता है, समाज में अपनी हैसियत बताने का क्योंकि–

पढ़–लिख के ही किस्मत को बदल पायेगी औरत
साथ मर्द के चल पायेगी औरत
औरत जो पढ़ गई वो दब कर न रहेगी
हरगिज न समाज के जुल्म को सहेगी।

यदि महिलायें कुछ हुनर जानती हैं तो वह पूरी जान से मेहनत करके परिवार का भरण पोषण करने में अपना खून–पसीना एक कर देती हैं। पुरूष को मानसिक सम्बल प्रदान करती हैं। पुरूष जब तमाम झंझाबातों से टूट जाता है तो महिलायें चट्टान की तरह हालात का सामना करती नजर आती है। परिवार का आधार महिला ही है–

औरत न हो तो घर में अंधेरा रहे सदा,
चूल्हा न जले भूख का डेरा रहे सदा।
बच्चे अनाथ डोलें तो बूढ़े रहें पड़े,
डगर – मवेशियों के भी बाड़े रहे सड़े।।

भारतीय अर्थ व्यवस्था का आधार बिन्दु कृषि है। कृषि क्षेत्र में महिला श्रम का महत्वपूर्ण स्थान है।

औरत न हो तो कौन नलाई करे भला,
खुर्पी लगाये कौन, गुड़ाई करे भला?
फिर धान रोपने का नहीं आदमी में दम,
औरत न हो तो उनके निकल जाये सारे खम।

कोई भी इमारत बने, सड़क, पुल, कारखाने, मशीन कहाँ नही है औरत के श्रम की भागीदारी। औरत के शारीरिक श्रम के बगैर विकास क्रम में हमारा आगे बढ़ना मुश्किल है–

वो पत्थर तोड़ती है, धूप में सड़के बनाती है,
गगन चुम्बी इमारत नींव से ऊपर उठाती है
वो मिल में काम करती है, मशीनें भी चलाती है
वो सब्जी बेचनें को ठोकरें दर–दर की खाती है।

सामाजिक बेड़ियों के खिलाफ आवाज बुलन्द की 19वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय महिला आन्दोलन की नायिका रमाबाई ने। तेरह साल की उम्र में की गई शादी को नकारते हुये कहा ''कच्ची उम्र के रिश्ते'' को पक्का मानने को वह तैयार नहीं है। तमाम विरोध और विपरीत परिस्थितियों के बावजूद रमावाई ने अपना अस्तित्व बनाये रखते हुये सामाजिक संचेतना में महिला के अस्तित्व को स्वीकार कराया।

वैश्विक स्तर पर महिला योगदान की चर्चा करें तो सन् 1909 में अमेरिका में कपड़ा व अन्य फैक्ट्रियों में काम करने वाली महिलाओं ने पहली वार 'महिला दिवस' बनाया। उनकी मांग थी– (1) श्रम कानूनों में परिवर्तन (2) 8 घंटे का कार्य दिवस एवं (3) वोट देने का अधिकार। सन् 1910 में क्लारा जेटकिन एवं रोजा लग्जमवर्ग ने सामूहिक रूप से ''अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस'' मनाये जाने का प्रस्ताव रखा। महिलाओं की मुक्ति के संकल्प और हर तरह से शोषण मुक्त दुनिया बनाने के लिये 1913 से अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस 8 मार्च को मनाया जाता है। 1917 में महिला आन्दोलन में 'शान्ति–जमीन और रोटी' को भी शामिल किया गया। शान्ति, जमीन और रोटी का सामाजिक महत्व महिला अस्मिता से जुड़ा है, तभी तो परिवार की केन्द्रीय भूमिका में स्त्री है। 'बिन

घरनी घर भूत का डेरा', जैसे कथनों के साथ ही, 'जिस घर में बिटिया नहीं, उस घर की देहरी सूनी रह जाती है।' उस घर में रौनक नहीं होती, समाज की इकाई परिवार में महिला के महत्व और उसकी भूमिका को उजागर करती है।

शिक्षा की रोशनी में समाज की बेड़ियों से आज की लड़की जूझ रही हैं। आनर किलिंग की परवाह किये बगैर खाप पंचायतों को चुनौती देती सामाजिक परिवर्तन की राह प्रशस्त कर रही है। खेत–खलिहान, कारखाने से लेकर देश और दुनिया के हर क्षेत्र में मुस्तैदी के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करा समाज को एक नई दिशा देने को प्रयासरत है, आज की महिला। निर्भया आन्दोलन के वक्त दिल्ली की छात्राओं ने चीखकर कहा था– 'हमारी स्कर्ट से ऊँची हमारी आवाज है, हमें चाहिये बेखौफ आजादी'। इसके परिणाम स्वरूप बने नवीन यौन उत्पीड़न कानून की बजह से देश के तमाम नेता, अभिनेता, विधायक, सांसद, प्रोफेसर, डाक्टर, पत्रकार, सन्त–महात्मा और तमाम संप्रभुओं को जेल जाना पड़ा।

विकलांग हैं हम, तो क्या कर लेगा ऐवरेस्ट, मुझे तो एवरेस्ट फतह करना है। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन में टॉप भी करना है, विकलांगता के बावजूद हमें अपना हक प्राप्त करना आता है। खेल के मैदान में, संगीत के क्षेत्र में, सिनेमा–थियेटर, साहित्य जगत में, छोटे, व्यापार से लेकर कारपोरेट सेक्टर तक, देश–दुनिया की राजनीति के हर क्षेत्र में और शासन प्रशासन में प्रभावी हस्तक्षेप के साथ आन्तरिक सुरक्षा से लेकर देश की सुरक्षा के प्रत्येक सेक्टर में परिवर्तन की बयार लेकर आ चुकी है महिला। इरोम शर्मिला, तसलीमा नसरीन, अरून्धति राय मेधा पाटकर, महाश्वेता देवी, मैत्रेयी पुष्पा, अरुणिमा, मलाला यूसुफ जई, मेरीकाम, इरा सिंघल यह फेहसिस्त बहुत लम्बी हैं, इन सभी के अप्रतिम संघर्ष से सामाजिक परिदृश्य और विमर्श कुछ बदला जरूर है, लेकिन समाज के पुरुषवादी हिस्से की सोच अभी नहीं बदली है। तभी तो संसद और विधान सभा में 33% महिला आरक्षण को अभी स्वीकृति प्राप्त नहीं है। पर रास्ता निकलेगा, क्योंकि

सामाजिक परिवर्तन में महिलाओं ने अभी तक जितनी भी भूमिका उजागर की है वह तो झरोखा भर है। डगर बहुत आगे तक जायेगी। सफदर हाशमी ने बहुत पहले कह दिया था–

हर खासो – आम गौर से सुनना ये कहानी,
औरत की कहानी है ये औरत की जुबानी।।
देखो हम महिलाओ को जो आ गई हैं सामनें,
मिल जाओ हमारे संग, ये सैलाव है, रुक न पायेगा।।

सन्दर्भ

1. कथकली बागची/मिनी फिलिप – स्त्रियां लुप्त क्यों हो रही है, स्त्री के लिये जगह, सम्पादक– राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, 1994, पृ0–105
2. कविता कृष्णन – महिला आन्दोलन, समकालीन जनमत, मार्च 2010, पृ0 4–6
3. जन नाट्य, मंच – सफदर, राजकमल, 1989, पृ0 83–85
4. पाण्डुरंग बामन काणे – धर्मशास्त्र का इतिहास, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ पृ0 313–314
5. B. Kuppuswany – The Change in the status of women, in Social Change in india, Vikash, 1979, P. 239-265

ckr e gh jkr chrh

जब तुम्हारी बात की तो बात में ही रात बीती
एक अद्‌भुत रात थी, जो बात में ही रात बीती
स्वप्न जैसी जिन्दगी यह
स्नेह जल में तिर चली थी,
देह बाँटी, गेह बाँटा
वेदना सी धर चली थी–
घन बने काले नयन, बरसात में ही रात बीती
जब तुम्हारी बात की तो बात में ही रात बीती
प्राण मचले जब मिलन को
उड़ चले पंछी सजीले,
जो उड़ा था आस लेकर
दृग लिये लौटा सजीले–
उम्र भर चलते हुए अज्ञात में ही रात बीती
जब तुम्हारी बात की तो बात में ही रात बीती
दो दिवस की जिन्दगी यह
कट गई जद्दो जहद में,
राख बनकर उड़ चले बस
हम क्षितिज के पास हद में–
यों लगा ज्यों एक झंझावात में ही रात बीती
जब तुम्हारी बात की तो बात में ही रात बीती
सह सका जितनी, सही है
अन्य को बाँटी न पीड़ा,
बाहु फैला विश्व नापा
नित्य करते जगत क्रीड़ा–
सो गया थककर, सुहाने प्रात में ही रात बीती
जब तुम्हारी बात की तो बात में ही रात बीती

e d l dj y foJke

अनन्त जीवन–पथ राही, मैं कैसे कर लूँ विश्राम
अविरल यात्रा–गंगा मेरी, जाना प्रिय सागर के धाम
चलना ही जीवन, सत्य यही
अमर जगत में रमे सभी,
चलते–चलते छाया जैसे
काया–कर में थमें कभी–
साथी कैसे थम जाऊँ अखिल शून्य मेरा आयाम
अविरल यात्रा–गंगा मेरी, जाना प्रिय सागर के धाम
है तलाश में साया अपने
आज अमा के अँधियारे में,
कहाँ–कहाँ तक जाकर खोजा
भटका अपने उजियारे में–
कैसे मूँदूँ नयन अलख हैं एक बिन्दु दाता घनश्याम
अविरल यात्रा–गंगा मेरी, जाना प्रिय सागर के धाम
नयन मुँदे अलसाये–से
लगता है दर्पण धुँधला है,
प्रिय तुम अब भी अपने हो
मेरा ही मन बदला है–
मन के परिवर्तन, परिक्रम को देना अभी नया आयाम
अविरल यात्रा–गंगा मेरी, जाना प्रिय सागर के धाम
तुम अपने जैसे ही थे,
मिले अचानक पथ पड़ाव में,
चलते रहे, मुझे कहते यही
रुको मत, पहुँचना है गाँव में–
कैस दूँ मैं यति निज गति को, जब जीवनधारा अविराम
अविरल यात्रा–गंगा मेरी, जाना प्रिय सागर के धाम

xk/kh u fl [kkb Fkh ge vfg l k dh yMkb

गांधी ने सिखाई थी हमें
अहिंसा की लड़ाई
अधिकार की याचना के लिए नहीं
अपितु–
प्राप्त करने हेतु स्वत्वाधिकार
आचार, सदाचार, व्यवहार
उन्हौने दिया था हमें–
मज़बूत कर,
तपसिद्ध सत्याग्रह–शस्त्र
आत्मबल–अस्त्र,
इन्हें हस्तगत कर हमने–
सहज ही पान कर ली
डायर के आग्नेयास्त्रों की अग्नि,
और कर दी अग्नि–ज्वालाओं की परिणति
स्वातंत्र्य दीप शिखाओं में।

इसके साथ ही–
लोहिया के शब्द
अंकित हैं शिलालेख की भाँति–
अब भी हमारे मन मस्तिष्क पर,
जैसे हो हृदय के चिर सहचर।
कौन बोले कौन बताये–
वे कौन ?
जितना था, पूरा–का–पूरा ओढ़कर बैठ गए,
धर्म–समभाव, धर्मनिरपेक्ष–भाव–

प्रेमभाव ओढ़े हुए,
एक विचित्र दाँव–
एक सचित्र भाव,
जो उसमे थोड़ा–सा व्यर्थ लगा/समझा–
हमारी तरफ सरका कर बुहार दिया–
हमारा मुँह ठँककर
शेष तन पैरों तक, चादरविहीन कर–
हमें शिनाख़्त में सम्मिलित कर
वैकल्पिक–पुरुष करार दिया।

फिर भी हमारे मुख पर
उनसे अधिक–
यह चमक है, दमक है,
राष्ट्रीयता, देश प्रेम से सनी
अस्मिता की पहचान से युक्त–
गांधी का सत्याग्रह हमारे साथ है,
अहिंसा का अस्त्र शस्त्र हमारे हाथ है।

fnYyh

दिल्ली !
जिसकी हर धड़कन से
सिहर उठता है–
भारत के जन–मन का तन,
हार जीत की
जो मंजिल है,
वह दिल्ली–
भारत का दिल है।
× × ×
दिल भी होता है ?
जन–मन क्या जाने!
किसी तरह जो अपना तन
अपना जीवन भी
सूखे तृण से टाँके
कभी–कभी श्वानों–
कटु–वराह से भी
रण–रत होकर
पा लेता–
कुछ जूठे टुकड़े,
फ़ाक़ों से जलता
पापी पेट भरने को।
× × ×
अपना यौवन भी जो
चिथड़ों से ढाँके,
तरुणाई हो गई रखैल
किसी यौवन की,

लाज बिक गई–
बस दो रोटियों में ही।
× × ×
भूखे, बेबस, बेघर
आज़ादी का क्या अहसास करें
आज़ादी–
केवल मृगतृष्णा है
जो न कभी मिल पाई–
संदेशों और सांत्वनाओ से
आश्वासनों और योजनाओं से।
× × ×
अपनी कुछ परिभाषाएँ
कुछ टूटी आशाएँ,
टूट–टूट जुड़ती–
श्वास बन गईं,
टूट–टूट जुड़ता–
विश्वास बन गईं।
× × ×
गरीबों के लहू से–
ईद मनाने वालो,
दीवाली के दिये जलाने वालो!
कभी यहाँ भी आकर देखो–
कितना अँधियारा गहराया है,
हम जलते हैं–
रौशन होते हैं तुम्हारे घर।
× × ×
मन्दिर, मस्जिद, दरगाहें, मठ
पीर, पुजारी, मुल्ले–
सब कुछ सरकारी हैं,

स्वतंत्रता और स्वतंत्रता–दिवस
गणतंत्र और गणतंत्र–दिवस,
सब कुछ सरकारी है–
साहब सरकारी है,
गुलाम सरकारी है,
अपनी तो केवल साथिन–
इन सबकी फरमाबरदारी है।
× × ×
हम क्या जानें,
कैसे और कहाँ से आई
दिल्ली मे बैठी–
वो आज़ादी,
आज़ादी का पर्व सरकारी है,
अपना क्या–
चलती फिरती लाशें भर हैं
बिना कफ़न के,
आज़ादी क्या होती है–
हम क्या जानें।

reu e> dk Lugfn;k

तुमने मुझको स्नेह दिया
यद्यपि मैं इसके योग्य नहीं,
क्षण भर को मिलने आया हूँ
मेरी मंजिल है दूर बहुत।

साँकल मत पहनाओं
मैं तो उड़ते बादल की छाया हूँ,
सूरज–सा एक पथिक ठहरा
भोर कहीं हूँ, साँझ कहीं हूँ।

साँसों की भारी गठरी का
फेंक रहा हूँ तिनका–तिनका,
चाह रहा हूँ लौटाना मैं
ऋण मुझ पर है जिनका–जिनका।

थका–थका हारा मन है
फिर भी चलना मजबूरी है,
मंजिल रस्ता देख रही है
शायद अब कम ही दूरी है।

vo lku e vk,

अवसान में आए
क्यों झंझावात लाए ?
जीवन की भोर में आते
मेरे साथी!
प्रणों का उन्माद
कुछ तो जागा होता
मेरी मुस्कान से–
कोई डर खिला होता।

अपने में मगन लहर
पल भर ठहर,
इन नयनों की बूँद को
साथ ले जा–
आज मेरे सपने भी
मचल उठे हैं,
वेदना,
सागर–सी लहरा उठी है।

परिहास था
कभी इन अधरों पर,
आज तो बस–
अवसाद छाया है,
चाहता हूँ मैं–
आकाश, परिन्दों की तरह नापूँ,
बीत गया पतझड़–
अब बहार बनकर छाऊँ।

l d ekj 'krny

सुकुमार शतदल को
प्रीति के गीत गा,
जब भँवरे जगाते हैं
अंतर का अवसाद तब–
घने कोहरे सा छा जाता है।

साँझ की अलसाई बेला में
मादकता से
जब लौटते है–
नीड़ मे पंछी,
तब जनम–जनम का
एकाकी मेरा मन–
अपने अभावों की गाथा दोहराता है।

घनी रजनी के श्यामांचल में
चाँद–तारे–
व्यंग्य से मुस्कुराया करते हैं,
निज को निहार कर
जानकर भी–
तुम्हें ही मनुहारता हूँ,
प्राणों का श्वास तो–
तुम्हीं हो मेरे साथी।

f l rkjk e c l rh g f t Unx h

सितारों में बसती है ज़िन्दगी
रात जा रही है–
सितारों से दूर,
दिल के नग़मे रोने लगे हैं।

मन के अँधेरे दूर होगे–
सितारे कुछ और चमकेंगे,
जिनकी रोशनी में
कुछ भटके अपना रास्ता तलाशेंगे,
आगे बढ़ेगे
तुझे मिलेंगे–
तृप्त और ज्यादा तृप्त हो।

किसी नदी के तट पर
पूनम की चाँदनी में नहा,
सितारों को तलाशने–
फिर कदम आगे बढ़ेंगे।

l l kj e vkd j

संसार में आकर
सभी लिप्त हो जाते हैं–
स्वयं में,
आये–
हिन्द में गाँधी
नया संदेश लेकर,
त्याग कर जग
स्वयं में–
विश्व को लीन करके,
चल दिए–
एकता,
स्वाधीनता का संदेश देकर।

बापू!
तेरी माटी तो
माटी में मिल गई,
क्षण भंगुर काया का
क्या रोना,
फिर भी
अवसरवादी लेते हैं
तेरा दम,
तुझको याद कर–
मना लिया करते हैं
दो अक्टूबर।

nndje>re

दर्द देकर मुझे तुम
क्यों बेजुबाँ बनाते हो,
हृदय व्यथित है मेरा
उसे तुम क्यों सताते हो ?

सच है कि–
दुनिया तेरी बनाई है,
पर यहाँ–
अब तेरा राज नहीं है
क्योंकि
अब जीवन भार बनकर रह गया है,
किसी और का क्या–
अब ख़ुद का सहारा तक नहीं है।

प्रीति करके
क्या मिला हमको यहाँ पर
कुछ नहीं–
दो बूँद आँसू छोड़कर,
कल जिसे हमने
लगाया था गले से,
चल दिया है
आज वह नाता तोड़कर।

दर्द
इतना बढ़ गया है ज़िन्दगी में
कोष भी–
खाली हुआ है आँसुओं का,
हँस नहीं सकते
यहाँ हँसना मना है–
संसार क्या है
एक जमघट बेबसों का।

भूल जाओ तुम
पुराणों की कथायें,
शेष के फन पर भला
धरती सधी है,
यह हमारे आशियानों की
चिता पर, खड़ी
हमी पर हँस रही है।

ftUnxhfl Q ,d yEg dh ugh g

ज़िन्दगी सिर्फ़ एक लम्हे की नहीं है
कोंपली सपने किसे दे दूँ मैं अपने
ओस उड़ने के लिए पर चाहती है
देखती है क्षितिज के उस पार सपने

आओ हम मिल–बैठकर हँस लें, हँसा लें
आँसुओं के वास्ते जीवन नहीं है
प्यार से रचनाएँ गढ़ लें ज़िन्दगी की
मृत्यु उसका छोर है, बन्धन नहीं है

काँधे से काँधा मिलाकर चल पड़े हम
भूख से बेज़ार तन–मन को सँभालें
हर क़दम साथी नये बनते रहेंगे
वहम से हम पाँव तो बाहर निकालें

जो बोल नहीं सकते, ऐसे भी हैं इन्साँ
आओ, हम आज उनकी ग़ैरत को झिंझोड़ें
बेज़ानों की ज़बानों में बोल डालें
ताकि वो ख़ामोशियों के मौन तोड़ें

[ku ckry e gk fd l h dk Hkh

खून बोतल में हो किसी का भी
हमने उसको सँभाल रक्खा है
हम तो व्यापारी हैं सियासत के
ये तिजारत का माल अच्छा है

ख़ून हिन्दू को हो कि मुस्लिम का
जिसको होती है ख़ून की हाजत
हम बताते नहीं कि किसका है
हमको तो चाहिए फ़क़त दौलत

अपनी तो राजनीति ही है ये
आए दौलत, रहे हुकूमत भी
ख़ून ख़ुद आके बेचा जायेगा
भूखा इन्साँ रहे, ज़रूरत भी

कोई बेचे न बेचे, ले लेंगे
ख़ून जाहिल का हो कि आलिम का
हमको तो ख़ून चाहिए, ख़ूँ हो–
चाहे हिन्दू का हो या मुस्लिम का

eDrd

(1)
मैं उपजाऊ धरा नहीं हूँ
रिस्तों की फसलें मत बोओ
मेरा जीवन ऊसर जैसा
बीज प्रीत का व्यर्थ न खोओ

(2)
अपनापन तो अपनापन है
अपनापन सबको भाता है
अपनपन के सघन वृक्ष की
डाल असीम दानदाता है

(3)
मैंने हँसना सीखा है
मैं नहीं जानता रोना
बरसा करता है प्रतिक्षण–
मेरे जीवन में सोना

(4)
शांत समुन्दर में उमड़े व्यथा
तूफ़ान भयंकर उठ आता है
कवि अपनी पीड़ा को थामे
कुछ धीरे–धीरे लिख जाता है

(5)
दिन अपनी गरीबी के घटा ले प्यारे
अपने ही लहू से तू नहा ले प्यारे
आयोग का फतवा है कि भूखा मत मर
जब कुछ न मिले, ख़ुद को चबा ले प्यारे।

(6)
मशरिक में सूरज की लाली लहराई है
किरणों की बाँहों में उमड़ी अँगड़ाई है
अँधियारे मिटते हैं ख़ुशख़बरी आई है
गुंचों के होठों से फूटी तरुणाई है

(7)
नए दिन का हर पल सुनहरा रहा
उजाला सितारों का गहरा रहा
गरीबों की कुटिया पे छाया हुआ
गरीबी के बादल का पहरा रहा

(8)
राख के ढेर में चिंगारियाँ ज़िन्दा हैं अभी
हमने जज़बातों को सीने में छिपा रक्खा है
आओ, माहौल के सीने में हरारात भर दें
हर तरफ़ वक़्त ने हिमपात मचा रक्खा है

(9)
ख़ुलूसो–प्यार दिखाओ तो कोई बात बने
दिलों के फूल खिलाओ तो कोई बात बने
मज़ा तो तब है कि वीराने भी महक उट्ठें
बहार बनके तुम आओ तो कोई बात बने

(10)

दिन वर्षों से युग में बदले
हम चाँद–सितारों तक पहुँचे
मेरे दिन भी कभी बहुरेंगे
कुटिया इक निर्धन की सोचे

(11)

राख के नीचे दबी आपने चिंगारी–सा
अपने सीने में जो कुछ ख़ास छुपा रक्खा है
उसको नग़मे–सा अगर जो नहीं गया तो फिर
ख़ाक कर देंगे, ये शोलों ने जता रक्खा है

(12)

जला के बस्तियाँ आबाद न बरबाद करो
उजड़ी बस्ती को बसाओ तो कोई बात बने
नफ़रतें दिल के अँधेरे में न दहकें हरगिज
प्यार का दीप जलाओ तो कोई बात बने

(13)

हर दीपक से दीप जलाओ
कली–कली जीवन मुस्काये
सपने सजें, खिले तरुणाई
सुख सागर में जगत नहाये

(14)

कुछ देर तो हम अश्कों को पी लेते हैं
ज़ख़्मों को छुपा लेते हैं, सी लेते हैं
वो हमसे बिछुड़ने को ही मिलते हैं मगर
एक लम्हा ही सही, चैन से जी लेते हैं

(15)

झूठ सब नश्वर जगत में
है नहीं विश्राम पथ में
स्नेह की बाती जलाओ
दीप्त हो कथ में, अकथ में

(16)

क्षितिज के उस पार से इक रौशनी आयी है,
अफसाने को नहीं, जिन्दगी जीने को आयी है।
जो भी मिल जाये जहाँ में, गले लगते चलिये,
मिलना तो मिलना है, इसमें क्या कमी आयी है।

(17)

अब तो हम कविताओं में आने लगे हैं,
जिन्दगी को देख अब शरमाने लगे हैं।
वो जिन्दगी जो कभी अपनी थी यारो,
ये जिन्दगी किसी और की गाने लगे हैं।